कैथी लिपि का इतिहास

भैरव लाल दास



लगभग चार सौ वर्षों तक बिहार और उत्तर प्रदेश के घर-घर में रहनेवाली कैथी लिपि के जाननेवालों की संख्या अब गिनी-चुनी ही रह गई है । कैथी जनलिपि के रूप में थी और इस अवधि में इसे राज और न्यायालय की भी मान्यता मिली। यह मैथिली, भोजपुरी, मगही सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की लिपि भी थी । कैथी के संदर्भ में शोध करना और शोध को सरस साहित्य का रूप देना श्री भैरव लाल दास जैसे 'साधक' से ही संभव हो सकता था। मेरा विश्वास है कि यह किताब बिहार और उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय लिपि को जीवित रखने के संबंध में निति-निर्धारकों को एक नए बहस का अवसर प्रदान करेगा। मैं इतना निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि अब कैथी लिपि अगले पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहेगी ।

श्री ताराकान्त झा
सभापति,
बिहार विधान परिषद्





कैथी लिपि का इतिहास

भैरव लाल दास

प्रकाशक
द्वारिका पब्लिकेशन्स
पटना



ISBN- 978-81-910602-1-8

प्रथम संस्करण : 2010

आवरण : सुश्री अलका

प्रकाशक : द्वारिका पब्लिकेशन्स
104, मुण्डेश्वरी राजीव अपार्टमेन्ट
बुद्धा कॉलोनी, पटना - 800 001
दूरभाष : 0612-2520431

मुद्रक : इस्टर्न बुक एजेन्सी
305 बुद्धा प्लाजा
बुद्ध मार्ग, पटना-1
दूरभाष : 9334089207

मूल्य : 150/- (एक सौ पचास रुपये मात्र)

दादी, पूज्यपाद
स्व. पूर्णिमा देवी
को समर्पित






BIHAR RESEARCH SOCIETY (RESEARCH & PUBLICATION) OF PATNA
5480
31.10.12
PATNA

अनुक्रमणिका



उपोद्‌घात

श्री भैरव लाल दास की शोधपरक पुस्तक "कैथी लिपि का इतिहास" का मैंने उत्सुकता पूर्वक अवलोकन किया और इनकी अन्वेषी-दृष्टि और अथक साधना से आश्वस्त हुआ। अभी हाल ही कुछ वैज्ञानिकों ने जिस तरह विलुप्त 'सरस्वती' नदी का संधान किया है और उसके प्रवाह-क्षेत्र को चिन्हित किया है, कुछ ऐसा ही कार्य श्री दास ने लगभग लुप्त हो गयी 'कैथी' लिपि के संदर्भ में किया है। इनके भीतर एक अनुसंधित्सु की उत्कट जिज्ञासा और लम्बी दूरी के धावक का धैर्य है, जिसकी बदौलत यह श्रम-साध्य कार्य सामर्थ्यपूर्वक सम्पन्न करने में ये सफल हुए हैं।

वस्तुतः 'लिपि' का इतिहास मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा है। मनुष्य ने जब बोलना शुरू किया तो बोले हुए शब्द को लिखने की जरूरत पड़ी। इस तरह भाषा और लिपि की यात्रा एक साथ शुरू हुई। प्रारंभ में उच्चरित शब्दों को अंकित करने के लिए कुछ संकेत-चिह्न निर्धारित किए गए होंगे और फिर उन संकेत चिह्नों को सामाजिक स्वीकृति मिली होगी। इस प्रकार भाषा और लिपि दोनों सामाजिक समझौते एवं सहमति की देन हैं। प्रश्न उठता है कि भाषा और लिपि के लिए निर्धारित संकेत चिह्नों का आधार क्या था ? निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकृति और जीवन। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि के रूप-रंग, हाव-भाव, क्रिया-कलाप आदि को संकेत-चिह्नों के द्वारा भाषा और लिपि में चित्रित किया गया। इस चित्रण से ही चित्र-लिपि बनी जो सबसे पुरानी मानी जाती है। आज चीनी और जापानी भाषा इसी चित्र-लिपि में लिखी जाती है। हमारे यहाँ संस्कृत और हिन्दी की देवनागरी लिपि में अक्षरों का स्थिरीकरण और स्वरूप-निर्धारण भी लम्बे प्रयत्न के बाद संभव हुआ है। दोनों भाषाओं की लिपियों में किसी छूटे हुए शब्द या पद को जोड़ने के लिए जो संकेत चिह्न है, उसे काक-पद ( ) कहा जाता है। काक-पद का शाब्दिक अर्थ हुआ - कौवे का पैर। इस संकेत चिह्न की आकृति कौवे के पैर की तरह है। इससे स्पष्ट है कि भाषा और लिपि में संकेत चिह्नों के प्रयोग और प्रचलन का आधार प्रकृति और जीवन के विभिन्न उपादान रहे हैं।

मनुष्य में अनुकरण की सहज प्रवृति होती है। वह प्रकृति और जीवन में जो कुछ देखता है, भाषा अथवा कला में उसका अनुकरण करता है। ग्रीक भाषा में एक शब्द है - मिमेसिस (Mimesis) जिसे अंग्रेजी में इमिटेशन (Imitation) और हिन्दी में अनुकरण कहा जाता है। अरस्तू का अनुकरण सिद्धांत कला को प्रकृति की अनुकृति मानने के साथ उसमें कलाकार की सर्जनात्मक प्रतिभा का योग भी स्वीकार करता है। हमारे यहाँ आचार्य भरत मुनि ने भी नाटक को 'भावानुकीर्त्तन' कहा है। कुल मिलाकर भाषा अथवा कला के क्षेत्र में अनुकरण का सृजनात्मक उपयोग स्वीकार किया गया है। 'लिपि' के विकास में तो इसका विशेष योगदान है। कलाओं का जो वर्गीकरण किया गया है, उसमें लेखन-कला महत्वपूर्ण है। इसका सीधा सम्बन्ध लिपि से है। 'लिपि' से ही 'पाण्डुलिपि' और फिर 'पांडुलिपि-विज्ञान' का विकास हुआ है। इस तरह भाषा-विज्ञानियों के लिए 'लिपि' सदैव कौतूहल का विषय

रही है। भाषाओं की लिपियाँ अलग-अलग होती हैं और एक लिपि में भी कई भाषाएँ लिखी जाती हैं। उदाहरण के रूप में 'रोमन' या 'देवनागरी' का नाम लिया जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने बिहार और उत्तर प्रदेश में सदियों से प्रचलित 'कैथी' लिपि, जो लगभग पचास साल पहले तक चलन में थी, का विशद अध्ययन उपस्थित किया है। सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक विकास के दौर में लिपियों और भाषाओं का समाप्त हो जाना गहरी चिन्ता का विषय है। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व की छह हजार से अधिक भाषाओं की सूची तैयार की है जिसमें आधी भाषाओं के बोलने वाले एक हजार से भी कम लोग हैं। युनेस्को ने भारत में ही 196 भाषाओं को चिन्हित किया है, जिन पर लुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। एक बहुभाषी देश के रूप में भारत युनेस्को की सूची में सबसे ऊपर है, जहाँ की सर्वाधिक क्षेत्रीय भाषाएँ समाप्ति के कगार पर हैं। इसमें दो राय नहीं कि भाषा और लिपि की विविधता किसी समाज के समुन्नत सांस्कृतिक बोध और समृद्धि की सूचक है। यह कैसी विडम्बना है कि राजनीतिक परतंत्रता के काल में यह बहुरंगी विविधता बरकरार रही, लेकिन स्वतंत्रता के बाद इस सांस्कृतिक परम्परा पर संकट पैदा हुआ है।

बिहार में जमीन - जायदाद संबंधी अधिकांश पुराने दस्तावेज कैथी लिपि में हैं। ग्रामीण समाज और विशेषकर महिलाओं में 'कैथी' लिपि का अधिक प्रचलन था। इस लिपि का आविष्कार कायस्थ जाति के द्वारा माना जाता है, इसलिए इसे कैथी लिपि के नाम से जाना गया। शिक्षा और सम्पन्नता के बावजूद कायस्थ जाति के लोग व्यवस्था के चौथे पायदान पर थे तथा ऊपर की तीन जातियों के कोपभाजन थे। इसलिए कालान्तर में 'कैथी' सामाजिक-राजनीतिक षडयंत्र का शिकार हुई और इसे काल-कवलित होना पड़ा। 'कैथी' का स्थान 'नागरी' लिपि ने ले लिया। नागरी लिपि के एक प्रमुख आंदोलनकारी श्री अयोध्या प्रसाद खत्री बिहार के मुजफ्फरपुर के रहनेवाले थे, लेकिन नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना काशी में हुई और फिर नागरी पंडित वर्ग के प्रभाव में देवनागरी बन गयी। देवनागरी से कैथी का कोई टकराव नहीं था, एक ही सूबे में दोनों लिपियां समानान्तर चल सकती थीं, पर कैथी वालों ने अपनी कलम खड़ी कर दी। इस तरह देखते-देखते एक जीवंत लिपि जो स्त्रियों, शूद्रों, अन्य वर्णों के अधपढ़ों और ग्रामीणों के बीच सेतु का काम कर रही थी, अचानक गायब हो गयी।

मुझे इस बात का संतोष है कि इस पुस्तक के लेखक श्री भैरव लाल दास 'कैथी' की अकाल मौत पर कोई मर्सिया नहीं पढ़ रहे हैं, बल्कि एक तटस्थ एवं संजीदा शोधप्रज्ञ की तरह साक्ष्यों और तथ्यों के आधार पर कैथी लिपि के इतिहास का वस्तुपरक विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं। इस पुस्तक में यह भी जानकारी दी गयी है कि मैथिली की तरह भोजपुरी और मगही भाषा की भी अपनी अलग लिपि थी जो समय के प्रवाह में लुप्त हो गयी। इस तरह श्री भैरव लाल दास की यह पुस्तक भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों तथा भाषा एवं लिपि के विकास में रुचि रखनेवाले लोगों के लिए अत्यंत उपादेय है। इस श्रम साधना को भाषा एवं साहित्य जगत में यथेष्ट स्थान मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

डा० रामवचन राय
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
पटना विश्वविद्यालय
सम्प्रति : सदस्य, बिहार विधान परिषद्

लिपि का इतिहास

मानव जाति के महान आविष्कारों में लिपि का प्रमुख स्थान है । नदी घाटी सभ्यताओं में नगरों की स्थापना के साथ-साथ लिपियों का जन्म होता दिखाई देता है । मानव विकास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, भाषा और लिपि । यद्यपि भाषा और लिपि मनुष्य की वाणी के बाद अस्तित्व में आई, लेकिन वाणी के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए उसका किसी न किसी लिपि के रूप में होना जरूरी था । निस्संदेह भाषा या लिपि या बोली ही मनुष्य की संवेदना को प्रखॅर रूप से प्रस्तुत कर सकती है, बल्कि यही मानवीय रिश्तों के मध्य एक सेतु का कार्य करती है । मानव सभ्यता के विकास में, वाणी के बाद लेखन का ही सबसे अधिक महत्व है । मानव का बहुमुखी विकास इस वाणी को लिपिबद्ध करने की कला के कारण ही हुआ । अन्य पशु अपने मनोभाव को व्यक्त नहीं कर सकते हैं ।[1]

भाषाविद् डॉ0 बी. ब्लॉक एवं जी.एल.ट्रेगर ने अपनी किताब 'आउटलाइन ऑफ लिंग्विस्टिक एनालिसिस' में उल्लेख किया है कि भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करने वाले वर्ण प्रतीकों की परंपरागत व्यवस्था लिपि कहलाती है । भाषा को दृश्य रूप में स्थायित्व प्रदान करनेवाले यादृच्छिक वर्ण-प्रतीकों की परंपरागत व्यवस्था लिपि कहलाती है ।[2] इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार भाषा ध्वनियों की व्यवस्था होती है, उसी प्रकार लिपि वर्णों की। जिस प्रकार भाषा में ध्वनि और अर्थ का सम्बन्ध प्रतीकात्मक होता है, उसी प्रकार लिपि में वर्ण और ध्वनि का सम्बन्ध भी । जिस प्रकार भाषागत ध्वनि व्यवस्था परम्परागत होती है, उसी प्रकार लिपिगत वर्ण-व्यवस्था भी । व्यवहारिक दृष्टि से दोनों एक दूसरे के लिए नितान्त आवश्यक हैं, फिर भी लिपि के लिए जैसी अनिवार्यता भाषा की है, वैसी भाषा के लिए लिपि की नहीं । तात्पर्य यह कि भाषा लिपि के बिना भी रह सकती है, किन्तु, भाषा के बिना लिपि निरर्थक रेखाओं और बिन्दुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। फिर भी,

भाषा का समुचित विकास तभी संभव हुआ, जब उसे नाद-स्वरूप के साथ-साथ दृश्य स्वरूप भी प्राप्त हुआ। वाणी का वह दृश्य रूप ही लिपि है । लिपिगत स्वरूप प्राप्त कर भाषा को सूक्ष्म विकास के साथ-साथ व्यापकता का भी वरदान मिल गया । वह देश-काल की सीमा से मुक्त हो गयी।

लिपि ऐसे प्रतीक-चिन्हों का संयोजन है जिनके द्वारा श्रव्य भाषा को दृष्टिगोचर बनाया जाता है । मुंह से बोले गए शब्द या हाव-भाव से व्यक्त किए गए विचार चिरस्थायी नहीं रहते। दो या अधिक व्यक्तियों के बीच में हुई बातचीत केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहती है । भाषा का आधार ध्वनि है, इसे सुना जा सकता है । सुनी हुई या कही हुई बात केवल उसी समय और उसी स्थान पर उपयोगी होती है । प्राचीन काल में मानव को अपने विचारों को सुरक्षित रखने के लिए लिपि का आविष्कार करना पड़ा था । लिपिबद्ध कथन या विचार दिक् और काल की सीमाओं को लांघ सकते हैं ।[3]

लिपि के देवता

लेखन कला को प्राचीन समय से ही पवित्र माना जाता रहा है । प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी लिपियों के आविष्कर्ता के रूप में किसी न किसी देवता की कल्पना की है । भारत की मान्यता थी कि लिपि के निर्माता ब्रह्मा हैं, और शायद इसीलिए हमारे देश के प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा था। थोत् या थोत् को प्राचीन मिस्त्र के लेखन का देवता माना जाता था । बेबीलोन में लेखन का देवता नेबो था । प्राचीन यहूदी परंपरा के अनुसार लिपि के जनक पैगंबर मूसा थे । इस्लाम की मान्यता है कि अल्लाह ने ही अक्षर बनाए और आदम को सौंपे । हेर्मेस को यूनानी लिपि का जनक बताया गया है ।[4]

मनुष्य ने भाषा पहले और लिपि बाद में अर्जित की । फिर भी, सभ्यता के विकास में लिपि की देन भाषा की देन से कम गौरवपूर्ण नहीं मानी जाएगी । 'दि हिस्ट्री ऑफ अल्फाबेट में एडवर्ड क्लॉड ने इन विषयों की चर्चा की है और लिखा है कि यह सच है कि मनुष्य ने सहस्त्राब्दियों तक अपने ज्ञान एवं चिन्तनादि की उपलब्धियों को मौखिक परम्परा में ही सुरक्षित रखा, किन्तु उस सामर्थ्य की एक सीमा थी । भाषा के आविष्कार ने यदि मानव जाति के लिए बर्बरता से सभ्यता की ओर जानेवाले मार्ग का उद्घाटन किया, तो लिपि के आविष्कार ने दूसरी ओर उसके निरन्तर विकास की असीम संभावनाओं के द्वार को सदा-सदा के लिए उन्मुक्त कर दिया । इस प्रकार लिपि का आविष्कार मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट आविष्कारों में से एक माना जा सकता है ।

लेखन-कला की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति के बहुत बाद हुई, इस कारण, सहस्त्राब्दियों तक मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति तो करता रहा, किन्तु उनके संरक्षण का उसके पास कोई साधन नहीं था । इसका एक व्यापक दुष्परिणाम यह हुआ कि उस अंधकार-युग में न जाने कितनी ऐसी जातियां अपनी भाषाओं के साथ विश्व के रंगमंच पर आयीं और विलीन हो गयीं, जिनका हम आज नाम तक नहीं जानते । और, दूसरा

यह कि उस प्रागैतिहासिक युग की मानव-सभ्यता के इतिहास-ज्ञान के लिए आज हमारे पास पृथ्वी के गर्भ में यत्र-तत्र पाए जाने वाले ध्वस्त महलों, भग्न मृतिका-पात्रों तथा शिलीभूत अस्थि-पंजरों आदि पर आधारित अटकलों एवं अनुमानों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रत्यक्ष मार्ग या साधन नहीं ।

जिस दिन मनुष्य ने भाषा को लिपिबद्ध कर उसे दृश्य रूप प्रदान करने की कला का ज्ञान अर्जित किया, उस दिन से उसके जीवन में एक नये युग का प्रारंभ हुआ । उसी दिन से मनुष्य अपने ज्ञान-विज्ञान के संचय और संरक्षण में यथार्थ रूप से प्रवृत्त हुआ, जिससे सभ्यता और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास संभव हुआ । वास्तव में भाषा और लिखने की कला, ये दो ऐसी वस्तुएं हैं, जो मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से पशु से पृथक करती हैं और, जिनके सहारे वह निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है। यदि लिपि का आविष्कार नहीं हुआ होता तो मनुष्य अपनी सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान के विकास में आज कितने पीछे पड़ा होता, इसका अंदाज लगाना मुश्किल है ।

लिपि का उद्भव और विकास क्रम :

भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न की तरह ही लिपि की उत्पत्ति का प्रश्न भी अभी तक कोई निश्चित एवं सर्वमान्य उत्तर नहीं पा सका है । जिस प्रकार भाषा की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों ने अनेक प्रकार के अनुमान किए हैं, जिनमें कोई भी पूर्णतः सर्वग्राह्य नहीं है, लगभग वही स्थिति लिपि की उत्पत्ति के संबंध में भी है ।

डॉ0 बाबू राम सक्सेना ने अपनी किताब 'सामान्य भाषा विज्ञान' में लिखा है कि ''मनुष्य अपने समय की विशेष घटनाओं की स्मृति छोड़ जाना चाहता है । उनका उल्लेख वह अपने पुत्र-पौत्रों से कर दे और वे अपने नाती-पोतों से, तो परम्परा से स्मृति बाकी रह सकती है। पर, सदा यह संभव नहीं कि उसके ये निकटस्थ सम्बन्धी उसके पास हों । यदि उसने कोई बात अन्तस्तल में छिपा रखी है और उसके बच्चे छोटे-छोटे हैं, तो वह अपनी बात की स्थिति किस पर छोड़ जाए ? यदि वह उनको भी अपनी बात का भेद न बताकर दूरस्थ प्रेमीजन के पास भेजना चाहता है, तो वह किस उपाय का अवलम्बन करे ? आज जब लेख, पत्र, तार, टेलिफोन आदि का साधन सभ्य मनुष्य को सुलभ हैं, तब इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करना अनर्गल सा मालूम होता है । पर, जब ये साधन मौजूद नहीं रहे होंगे, तब क्या होता होगा?

लिपि आदि साधनों के रहने पर भी स्मृति आदि के लिए अन्य साधनों का भी उपयोग चल सकता है। हनुमान जी रामचन्द्र जी की मुद्रिका दिखाकर ही सीताजी को यह विश्वास दिला सके कि वह उनके स्वामी के दूत थे । दुष्यन्त ने अपने नाम की अंकित अंगूठी अभिज्ञानस्वरूप-शकुन्तला के पास छोड़ दी थी, ऐसा कालिदास का प्रतिपादन है । आज भी शादी-ब्याह के न्योते के रूप में सुपारी भेजने का देश में रिवाज है । किसी की मृत्यु की सूचना जिस चिट्ठी द्वारा दी जाती है, उसका एक कोना फाड़ दिया जाता है । यदि किसी बात को याद रखना जरूरी है और उसे भूल जाने का अंदेशा है, तो गाँठ बाँध ली जाती है। अपने देश में वर्षगाँठ भी निश्चय ही स्मृति के साधन-स्वरूप हैं । बच्चा कितने साल का

हुआ, यह बात डोरी में डाली हुई गाँठों की संख्या से मालूम हो जाती है । कुछ देशों में, विचित्र रेखाओं से खचित छड़ी को देखकर उन विभिन्न रेखाओं द्वारा स्मृति में आयी हुई बातों को दूत बता सकते थे ।

एक विशेष आकृति के अक्षरों से, एक विशेष शब्द द्वारा किसी विशेष भाव का उद्बोध हो जाता है। लेकिन इस भाव के ज्ञान के लिए, संकेत के पूर्वज्ञान की अपेक्षा अनिवार्य है । पेरू में कुइपु नाम की डोरियाँ होती थीं । ये दो फुट से अधिक लम्बी होती थीं । इनमें रंग-बिरंगे धागे बँधे रहते थे । इन रंगों और धागों में पड़ी हुई गाँठों से विविध अर्थों का संकेत हो जाता था, सफेद भाग से 'चाँदी' या 'शांति' का अर्थ निकाला जाता था, लाल से 'सोना' या 'युध' का । इसी तरह मृगचर्म में रंग-बिरंगे मोती - मूंगे आदि चीजें बाँधकर विविध अर्थों का बोध कराया जाता था । यह तरकीब उत्तरी अमरीका की कुछ जातियों में प्रचलित थी।

डॉ0 बाबू राम सक्सेना ने उल्लेख किया है कि स्मृति चिन्हों से चित्र संकेत, फिर भाव संकेत और तदनन्तर वर्ण एवं अक्षर-संकेत का विकास कम चला । "प्रथम संपूर्ण बात या वाक्य का बोध कराने वाले चित्र, फिर इन चित्रों से विकसित हुए उनके उद्बोधक संकेत और इनसे अक्षर, लिपि के विकास में यह कम रहा ।

लिपि के विकास के कम के संबंध में डॉ0 उदयनारायण तिवारी ने भी डॉ0 बाबू राम सक्सेना का ही समर्थन किया है । उन्होंने लिखा है कि "लिपि के संबंध में अनुसन्धान करने वाले विद्वानों का अनुमान है कि भाषा की भांति लिखने की कला की उत्पत्ति भी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए ही हुई होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं अथवा तथ्यों के संरक्षण की अपेक्षा अपने निकट की वस्तुओं से सहानुभूति प्रकट करने के लिए गुहामानव ने सर्वप्रथम चित्रों का अंकन किया था। उत्तरपाषाण काल के ऐसे अनेक चित्र विभिन्न देशों की कन्दराओं की भित्तियों पर मिले हैं । प्रतीकों द्वारा सन्देश भेजने की प्रथा भी अति प्राचीन से विभिन्न देशों में प्रचलित है । तिब्बती-चीनी सीमा पर जब किसी के पास मुर्गी का कलेजा उसकी चर्बी के तीन टुकड़ों एवं एक मिर्च के साथ लाल कागज में लपेटकर भेजा जाता है तो उसका अर्थ होता है कि युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । यह प्रसिद्ध है कि महाराज शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने आशीर्वाद के रूप में उनके पास घोड़े की थोड़ी लीद तथा पत्थर के टुकड़े भेजे थे । इससे तात्पर्य यह था कि तुम्हारे घोड़े तथा दुर्ग सुरक्षित रहें, जिससे तुम युद्ध में विजय प्राप्त करते रहो । इस विवेचन के पश्चात् डॉ0 उदय नारायण तिवारी ने भी 'लिखने की कला का आद्यरूप' चित्रलिपि को माना है और फिर उससे कमशः भावलिपि तथा ध्वन्यात्मक अर्थात् अक्षरात्मक एवं वर्णात्मक लिपि का विकास प्रदर्शित किया है ।

लिपि के सम्बन्ध में दूसरा सिद्धान्त लिपि की दिव्योत्पत्ति का है, जिसे हम दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त कह सकते हैं । इस सिद्धान्त का समर्थन मुख्यतः भारत के प्राचीन आचार्यों के कथन से होता है । भारत की परम्परागत मान्यता के अनुसार लिपि के आदि आविष्कर्ता ब्रह्मा थे। लिपियों के उद्भव और विकास के संबंध में भारतीय मान्यता भी द्रष्टव्य है । भारतीय साहित्य के अन्तर्गत "नारद स्मृति" में एक श्लोक को इतिहासविदों ने प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है । इस श्लोक के अनुसार - नारदस्मृति के अनुसार यदि ब्रह्मा ने लेखन-कला का आविष्कार

नहीं किया होता, तो यह संसार अभी तक आज की जैसी सुस्थिति में नहीं पहुँच सका होता। नारदस्मृति में वर्णित है कि :

नाकरिष्यद्यति ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम् ।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत् शुभा गतिः ।

अर्थात् यदि ब्रह्मा लिखने के द्वारा उत्तम नेत्र का विकास नहीं करते, तो तीनों को शुभगति प्राप्त नहीं होती । ब्रह्मा ने लेखन-कला का निर्माण क्यों किया, इसके संबंध में बृहस्पति का वचन है कि किसी बात को यदि मात्र छह महीने तक भी स्मरण रखने का प्रयास किया जाए, तो उस अल्पावधि में ही उसमें भ्रान्ति की संभावना उत्पन्न हो जाती है । इसीलिए ब्रह्मा ने पुराकाल में ही पत्रों पर रेखांकित किए जा सकनेवाले अक्षरों का निर्माण किया । रा०ना०दाण्डेकर में अपने लेख में लिखा है कि बदामी में ब्रह्मा की एक मूर्ति भी उपलब्ध है, जिसमें उनके हाथों में पत्रों का गट्ठर दिखाया गया है । इसके अतिरिक्त वीणा-पुस्तकधारिणी वाग्देवी सरस्वती के स्वरूप की जो भारतीय कल्पना है, उससे भी लिपि की दिव्योत्पत्ति के विश्वास को बल मिलता है । सरस्वती की वीणा भाषा के ध्वनिमय स्वरूप की ओर संकेत करती है और पुस्तक लिपि के वर्णमय स्वरूप की ओर । जैन मान्यताओं के अनुसार आदि तीर्थंकर रिषभनाथ ने अपनी पुत्री 'बंपी' को शिक्षित करने के लिए ब्राह्मी लिपि को विकसित किया । 'गरुड़ पुराण' के एक श्लोक - चित्रगुप्ताय नमस्तुभ्यम् वेद अक्षर दाताय, के अनुसार वेदों को अक्षरप्रदान करनेवाले भगवान चित्रगुप्त हैं ।

परन्तु वर्तमान युग के बुद्धिवादी विद्वानों के लिए लिपि या भाषा की दिव्योत्पत्ति के सिद्धान्त पर विश्वास करना संभव नहीं है । वे भाषा की तरह ही लिपि को भी मानव बुद्धि द्वारा अर्जित कला मानते हैं और उसकी व्याख्या विकासवाद के सिद्धान्त के आधार पर करते हैं ।

प्रसिद्ध इतिहासकार अलबेरुनी के अनुसार कई कारणों से भारतीय लेखन-कला को भूल गए थे, जिसे बाद में महर्षि व्यास ने पुनः आविष्कार कर श्रुति साहित्य को लिपिबद्ध किया। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतांत में लिखा है कि लेखन-कला का प्रादुर्भाव सबसे पहले भारत में ही हुआ था । चीनी विश्वकोष 'फा-वान-चू-लिन' में उल्लिखित है कि भारत की ब्राह्मी लिपि विश्व की सर्वाधिक पुरान एवं सर्वोत्तम लिपि है जिसका निर्माण 'फस' देवता ने किया है । अथर्ववेद में तो बड़े ही स्पष्ट रूप से कहा गया है - 'हे पृथ्वी' । जो कुछ भी तुम पर लिखा गया है, वह एक विशिष्ट वस्तु से लिखा गया है, जिससे यह अर्जित ज्ञान शीघ्र लुप्त न हो जाए । 'रामायण में भी राम नाम अंकित मुद्रिका हनुमान द्वारा सीता के सामने गिराने का उल्लेख है । यद्यपि रामायण (वाल्मिकी कृत) श्रुति परंपरा काव्य है । फिर भी, उस काल में लिपि का आविष्कार हो चुका था । महाभारत में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है कि महर्षि व्यास ने इस महान ग्रंथ को लिखने के लिए लेखन-काल में प्रवीण 'विद्यावारिधि और बुद्धि विधाता' गणेश को चुना ।[5]

गुफा चित्र

लगभग बीच-पच्चीस हजार वर्ष पहले का मानव गुफाओं में रहता था और उसका जीवन

मुख्यत: शिकार पर निर्भर था । कई प्राचीन गुफाओं में उस समय के मानव के रचे बहुत से चित्र मिले हैं। भारत में ये शैलचित्र बुंदेलखंड, मिर्जापुर, रायगढ़, छोटानागपुर और आगे दक्षिण में कर्नूल तक फैला हुआ है । स्पेन की प्राचीन गुफाओं में, सहारा की मरुभूमि की प्राचीन गुफाओं में भी गुफाचित्र पाए गए हैं । इन चित्रों में मानव और पशु आकृतियों के अतिरिक्त स्वस्तिक, चक्र, चतुष्कोण तथा तांत्रिक आकृतियां भी मिलती हैं । झारखंड के घाटशिला में काले पाषाण पर अंकित चित्र मिले हैं । बिहार और मध्य प्रदेश के कैमूर पर्वतश्रेणी में जो प्रागैतिहासिक चित्र मिले हैं, वे भी शिलाओं पर अंकित हैं । इन चित्रों में शिकार के दृश्य अधिक हैं । उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के भलदरिया गांव में कृष्णमृग के शिकार का एक चित्र मिला है । सोन नदी के पास के दुप्पैचौरासी गांव में एक ऐसा गुफाचित्र प्राप्त हुआ है जिसमें एक आदमी को पत्थर के भाले से हिरन का शिकार करते हुए दिखाया गया है । रायगढ़ की पर्वतश्रेणी में जोगीमार नाम की कुछ गुफाएं हैं, यहां के चित्रों में मानव, पशु, मकान तथा मूर्त्ति आदि की आकृतियां मिली हैं ।[6]

लेखन का आरंभ

आज संसार में लगभग 400 विभिन्न लिपियों का प्रयोग होता है । इनमें से बहुतों का आरंभ एवं विकास प्राचीन काल की कुछ प्रमुख लिपियों से हुआ है । जैसे, एशिया के पश्चिमी तट पर ई.पू. दूसरी सहस्त्राब्दी में सेमेटिक (सामी) भाषा परिवार के लिए एक अक्षरमालात्मक लिपि अस्तित्व में आई। 1000 ई.पू. के आसपास इस लिपि ने व्यंजनात्मक या वर्णमालात्मक रूप धारण किया । उस समय की इस लिपि को 'उत्तरी सेमेटिक', 'कनानी' या 'फिनीशियन' जैसे नाम दिए गए हैं । यूनानी लिपि स्पष्टत: फिनीशियन लिपि के आधार पर बनी थी । और, आज यूरोप, अमरीका और संसार के कई अन्य देशों में जिन लिपियों का चलन है वे सब इस यूनानी लिपि और इससे निर्मित लैटन या रोमन लिपि से ही विकसित हुई हैं । दूसरी ओर यानी पूर्व की ओर, इस उत्तरी सेमेटिक लिपि ने आरमेई, खरोष्ठी, पहलवी और अरबी जैसी लिपियों को जन्म दिया। हमारे देश में लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में अस्तित्व में आई ब्राह्मी लिपि ने भी बहुत-सी लिपियों को जन्म दिया है । भारत की सारी वर्तमान लिपियां (अरबी-फारसी लिपि को छोड़कर) ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं । इतना ही नहीं, तिब्बती, सिंहली तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की बहुत-सी लिपियां ब्राह्मी से ही जनमी हैं । लिपियों के इस विकास क्रम का वर्णन आगे विस्तार से किया गया है । तात्पर्य यही कि धर्म की तरह लिपियां भी देशों और जातियों की सीमाओं को लांघती चली गई । भाषाओं की सीमाएं लांघना तो लिपियों के लिए बहुत ही सरल काम रहा है। जो लिपि आरंभ में एक सेमेटिक भाषा के लिए अस्तित्व में आई थी, उसे बाद में भारोपीय परिवार की अनेक भाषाओं के लिए अपना लिया गया ।

प्राचीन काल से ही लेखन कला को पवित्र माना जाता रहा है । प्राय: सभी प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी लिपियों के आविष्कर्ता के रूप में किसी न किसी देवता की कल्पना की है । हमारे देश में यह मान्यता थी कि लिपि के निर्माता ब्रह्मा हैं, और शायद इसीलिए हमारे देश की

प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा । प्राचीन मिस्त्र के थोत् को लेखन का देवता माना जाता था । बेबीलोन में लेखन का देवता नेबो था । प्राचीन यहूदी परंपरा के अनुसार लिपि के जनक पैगंबर मूसा थे। इस्लाम की मान्यता है कि अल्लाह ने ही अक्षर बनाए और आदम को सौंपे। कुछ यूनानी अनुश्रुतियों में हेर्मेस को यूनानी लिपि का जनक बताया गया है । परन्तु ई.पू. छठी शताब्दी का प्रसिद्ध इतिहासकार हिरोदोतस स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि यूनानी लिपि का निर्माण फिनीशियन लिपि के आधार पर हुआ ।

प्राचीन काल में किसी पुरातन और कुछ जटिल वस्तु को रहस्यमय बनाए रखने के लिए उस पर ईश्वर या किसी देवता की मुहर लगा दी जाती थी, किन्तु आज हम जानते हैं कि लेखन-कला किसी भगवान की देन नहीं, बल्कि वह मानव की ही बौद्धिक कृति है ।[7]

लिपि का विकास

विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार लिपि के विकास की चार अवस्थाएं मानी जाती हैं (1) चित्रलिपि (Pictographic Script) (2) भाव-संकेत लिपि (Ideographic Script) (3) वर्णमाला लिपि (Alphabetic Script)(4) अक्षरात्मक लिपि (Syllabic Script)[8]

(1) चित्रलिपि (Pictographic Script) : लेखन-कला का प्राचीनतम स्वरूप चित्र लेखन है । किसी वस्तु का चित्र या आकृति खींचकर उसका बोध आसानी से कराया जा सकता है । जैसे, एक वृत्त पर किरणों जैसी रेखाएं खींची जाएं, तो यह चित्र किसी को भी सूर्य का बोध कराएगा । इन्हें आसानी से समझा तो जा सकता है, किन्तु इनमें ध्वनियां नहीं रहतीं । एक ही चित्र को अलग-अलग अपनी-अपनी भाषा में पढ़ सकते हैं ।[9] संसार के विभिन्न स्थानों में प्राप्त अत्यन्त प्राचीन शिलाखण्ड, काष्ठ पट्टिका, पशु चर्म, अस्थि तथा भोजपत्र पर अनेक कथाएं चित्रों के रूप में उत्कीर्ण एवं चित्रित मिली हैं ।[10]

(2) भाव संकेत लिपि (Ideographic Script) : सिर्फ चित्रों से सभ्य मानव का काम अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था । वृत्त पर किरणों वाली रेखाएं खींचने से 'सूर्य' का बोध सभी को हो सकता है । आगे चलकर इसी चित्र के साथ 'ताप' और 'गरम' के भाव जोड़े गए । इस प्रकार, चित्र-लेखन से भावचित्र लेखन अस्तित्व में आया । इन अंकित चित्रों या प्रतीकों का ध्वनियों से या भाषा से किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं होता । लिपियों के आरंभ काल की कई भावचित्रात्मक लिपियों में हम प्रायः एक से भावचित्र देखते हैं । यह स्वाभाविक भी है । जैसे, आंख से गिरती आंसुओं की बूंदें कई प्राचीन भावचित्रात्मक लिपियों में 'शोक' या 'दुख' भाव व्यक्त करती हैं । 'दो पैरों' का अर्थ केवल 'दो पैर' ही नहीं रहा, बल्कि 'चलना' भी हो गया ।[11] आज के वैज्ञानिक युग में भी हम अनेक भावचित्रों का इस्तेमाल करते हैं । जैसे, विषैले रसायनों की शीशी पर खोपड़ी का चित्र, सड़कों के किनारे बनाए जानेवाले यातायात चिह्न, अथवा खतरनाक क्षेत्र को प्रदर्शित करने के लिए खोपड़ी एवं हड्डियों का चिन्ह ।

(3) ध्वन्यात्मक लिपि – समय के साथ चित्रों या भावचित्रों का विकास होता गया । पहले तो

चित्रों में या प्रतीकों में उनकी वस्तुओं या भावों को आसानी से पहचाना जा सकता था, किन्तु धीरे-धीरे इनमें इतना अधिक परिवर्तन हो गया कि उन्हें ध्वनियों से ही पहचाना जा सकता था। इस प्रकार, भावचित्रों ने ध्वनिचित्रों का रूप धारण कर लिया । अब चिह्न या प्रतीक वस्तुओं या भावों को नहीं, बल्कि ध्वनियों को अभिव्यक्त करने लगे । इस प्रकार, भाषा और प्रतीकों के बीच सीधा संबंध स्थापित हुआ और लिपि बोली गई भाषा को व्यक्त करने लगी ।[12] ध्वन्यात्मक लेखन दो प्रकार हैं - अक्षरात्मक लेखन और वर्णमालात्मक लेखन ।

(4) वर्णमाला लिपि (Alphabetic Script) - वर्णमालात्मक लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसमें एक ध्वनि के लिए एक ही संकेत होता है और एक संकेत केवल एक ही ध्वनि को अभिव्यक्त करता है । भाषा की प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग वर्ण प्रतीक निश्चित किए गए । लिपि का प्रत्यक्ष संबंध भाषा के श्रव्य के रूप अर्थात् ध्वनियों से जुड़ गया । संकेतों की संख्या वर्णमालात्मक लिपि में सबसे कम होती है, इसलिए इसे आसानी से कम समय में सीखा जा सकता है। ई०पू० तीसरी शताब्दी में अशोक के धर्मलेखों में जिस ब्राह्मी लिपि के हम दर्शन करते हैं, वह वर्णमालात्मक ही थी । उसमें व्यंजन-संकेतों के साथ-साथ स्वर संकेत भी थे ।[13] सभी विकसित देशों में वर्णमालात्मक लिपियां का ही इस्तेमाल होता है । चीन इसका अपवाद रहा है । चीन की लिपि लंबे इतिहास में एक भावचित्रात्मक लिपि ही बनी रही, किन्तु अब वहां भी वर्णमालात्मक लिपि के प्रयोग की बात हो रही है ।

अक्षरात्मक लिपि (Syllabic Script) -यह वर्णमालात्मक लिपि का ही अधिक वैज्ञानिक और पूर्ण विकसित रूप है । वर्णमालात्मक लिपि के समान इसमें भी प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्रता, वर्ण तथा स्वर एवं व्यंजन के अलग-अलग वर्ण होते हैं, किन्तु वर्णमालात्मकता लिपि में व्यंजन के साथ स्वर के संयुक्त रूप को एकीकृत कर स्वतंत्र वर्ण के रूप में नहीं दिखलाया जा सकता । अक्षरात्मक लिपि की यह अपनी विशेषता होती है कि उसमें प्रत्येक स्वर की मात्रा तथा उसे सूचित करने वाले स्वतंत्र चिह्न निश्चित होते हैं, जिसके उपयोग से व्यंजन तथा स्वर के संयुक्त रूपों को एकत्रित कर स्वतंत्र वर्ण के रूप में दिखलाया जाता है । इस प्रकार आक्षरिक लिपि ध्वनियों की स्वतंत्र सत्ता का पृथक संदश देती हुई उन्हें परस्पर युक्त दिखलाने में भी समर्थ होती है, जो गुण वर्णमालात्मक लिपि में नहीं होता ।[14] पुराविदों का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता 2600 से 2000 ई0पू0 तक अपने चरमोत्कर्ष पर थी । सिंधु सभ्यता के दो प्रमुख स्थल मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा में खुदाई का काम 1921 ई0 में क्रमशः राखल दास बनर्जी और दयाराम साहनी ने आरंभ किया ।

भारत में लिपि-ज्ञान की प्राचीनता

सर्वप्रथम 1874 ई0 में विलियम जोन्स के प्रयत्न से जब एशिया के इतिहास, शिल्प, भाषा, साहित्य आदि के शोध के लिए बंगाल में 'एसियाटिक सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना हुई, तब से भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास और साहित्यादि अनुसन्धान के साथ भारतीय लिपियों के संबंध में भी अध्ययन एवं चिन्तन का कार्य प्रारंभ हुआ । 19वीं शताब्दी के अन्त तक

भारतीय भाषा, साहित्य एवं इतिहास के अधिकांश विदेशी अध्येताओं एवं पुरातत्ववेताओं द्वारा भारतीय लेखन-कला के संबंध में दो प्रकार की भ्रामक मान्यताओं का प्रचार होता रहा। प्रथम यह कि तीसरी-चौथी शताब्दी ई०पू० से पहले भारतवर्ष में लेखन कला अज्ञात थी और उस समय तक का समस्त भारतीय वांगमय मौखिक परंपरा में ही सुरक्षित था, तथा द्वितीय यह कि भारत की प्राचीनतम लिपि अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होनेवाली ब्राह्मी लिपि है, जो किसी विदेशी लिपि से उत्पन्न हुई, अर्थात् भारतीयों ने विदेशियों से लेखन-कला का ज्ञान अर्जित किया। उपर्युक्त भ्रामक मान्यताओं को जन्म देनेवाले तथा उसका पोषण एवं प्रचार करने वाले विद्वानों में बूलर, मैक्समूलर, अल्फ्रेड मूलर, प्रिन्सेप, सेनार्ट, विल्सन, हलवे, कस्ट, विलियम जोन्स, कॉप्प, लेप्सिअस, वेबर, बेनफी, पॉट, वेस्टर, गार्ड, सायस, व्हिटनी, स्टिबेन्सन, पॉलगोल्ड स्मिथ, बर्नेल, लेनोर्मट, डीके, आइजक टेलर, एडवर्ड क्लॉड, राइस, डेविड्स, बार्नेट, रप्सन और डेविड डेरिंगर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दूसरी ओर विदेशी विद्वानों में कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने उपर्युक्त मान्यताओं को भ्रामक बताते हुए उनके प्रति अपनी असहमति प्रकट की थी। ऐसे विद्वानों में डॉ० हुल्श, डॉ० फ्लीट, एडवर्ड थॉमस, प्रो० डउसन, जेनरल कनिंघम और प्रो० लासन आदि के नाम विशेष महत्व के अधिकारी हैं।

भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने एतद्विषयक अपना अद्वितीय पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' 1894 ई० में प्रकाशित किया, जिसका दूसरा संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 1918 ई० में प्रकाशित हुआ। अपने ग्रंथ द्वारा ओझा जी ने भारतीय लेखन-कला, भारतीय लेखन-कला की प्राचीनता सिद्ध की तथा पाँचवीं शताब्दी ई०पू० से लेकर आधुनिक युग तक की समस्त भारतीय लिपियों का चित्र देते हुए, उनका पारस्परिक सम्बन्ध एवं कलमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया। ओझाजी ने भारतीय लेखन कला की प्राचीनता तो सिद्ध की किन्तु वे यह नहीं बता सके कि उसका ठीक-ठाक प्रारंभ कब से माना जाए। इसी प्रकार उन्होंने ब्राह्मी को 'भारतीय आर्यों' का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार' तो कहा, किन्तु ई०पू० पांचवीं शताब्दी के पहले उसका क्या रूप तथा तथा प्रारंभ में उसका विकास किस प्रकार हुआ, इस संबंध में वे कुछ भी बताने में असमर्थ रहे। इस प्रकार के और भी कई प्रश्न उठते हैं, जिनका पूर्ण समाधान उनके ग्रंथ से नहीं होता। महाभारत, स्मृति (धर्मशास्त्र), कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा वात्सायन के कामसूत्र में भी लेखन-कला की प्राचीनता के साक्ष्य मिलते हैं।

बौद्धों के 'शील' (सुतन्त के प्रथम खण्ड का प्रथम अध्याय) ग्रन्थ में बौद्ध साधुओं के लिए अनेक निषेधों में 'अक्खरिका' खेल का भी निषेध है। इस खेल में खेलने वालों को अपनी पीठ पर या आकाश में अंगुली से लिखा हुआ अक्षर समझना पड़ता था। डॉ० राइस डेविड्स ने इस ग्रंथ के संग्रह का समय ई०पू० 450 के आस-पास माना है, किन्तु बौद्ध विद्वान 'शील' स्वयं इसे बुद्ध का वचन मानते हैं। 'विनयपिटक' संसार में लेखन-कला की प्रशंसा की गयी है तथा उसमें बौद्ध आर्याओं के लिए सांसारिक कलाओं के सीखने का निषेध होने पर भी लेखन-कला सीखने की आज्ञा दी गयी है। 'जातक' में व्यक्तिगत तथा राजकीय पत्रों, ऋण लेनेवालों की तहरीरों, पुस्तक तथा कुटुम्ब सम्बन्धी आवश्यकीय विषयों, राजकीय आदेशों तथा धर्म के नियमों को अन्य उपकरणों के अतिरिक्त स्वर्ण पत्र पर खुदवाए जाने

के उल्लेख मिलते हैं। जातक में वर्णित समाज ई0पू0 छठी शताब्दी से भी पहले का है। 'महावग्ग' ('विनयपिटक' का एक ग्रन्थ) में लेखा (लिखना), गणना (पहाड़ा) और रूप (हिसाब) की पढ़ाई का, ललित विस्तर में बुद्ध का लिपिशाला में जाकर अध्यापक विश्वामित्र से चन्दन की पाटी पर सोने के वर्णक (कलम) से लिखना सीखने के वृतान्त का वर्णन है। ओझाजी ने उपर्युक्त बौद्ध ग्रंथों का उल्लेख करने के पश्चात् लिखा है कि 'उपर्युक्त उल्लेख ई०पू० छठी शताब्दी के आसपास की दशा के बोधक हैं और उनसे पाया जाता है कि उस समय लिखने का प्रचार एक साधारण बात थी। स्त्रियाँ और बच्चे भी लिखना जानते थे और पढ़ाई ठीक वैसी ही थी जैसी कि अब तक हमारे यहाँ की देहाती पाठशालाओं की है, जिनमें लिखना, पट्टी-पहाड़ा और हिसाब पढ़ाए जाते हैं। जब हमारे यहाँ की प्रारंभिक पढ़ाई का ढंग ई0पू0 छठी शताब्दी से अब तक बिना किसी विशेष परिवर्तन के ज्यों का त्यों चला आया है, तब क्या आश्चर्य है कि बुद्ध के समय भी बहुत पूर्ववर्ती काल से वैसा ही चला आ रहा हो।

भारतीय लेखन कला की अति प्राचीनता से उपर्युक्त प्रागैतिहासिक कालीन प्रमाणों के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रमाणों का भी अभाव नहीं है। ई०पू० 326 में जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तो उसके साथ उसका एक सेनापति 'निआर्कस' नामक व्यक्ति भी था। 'निआर्कस' ने 'इण्डिका' नामक अपने विवरण ग्रन्थ में भारतीयों द्वारा रुई से कागज बनाने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार ई०पू० 306 के आसपास सीरिया के बादशाह सेल्युकस ने मेगास्थनीज को अपना दूत बनाकर चन्द्रगुप्त के दरबार में पाटिलपुत्र भेजा था। मेगास्थनीज ने अपने 'भारत वर्णन' में लिखा है -''यहाँ दस-दस स्टेडिआ (एक स्टेडियम 909 फीट 9 इंच का होता है, स्टेडिआ स्टेडियम का बहुवचन है) पर पाषाण लगे हैं जिनसे धर्मशालाओं का तथा दूरी का पता चलता है। नए वर्ष के दिन भावी फल (पंचांग) सुना जाता है। जन्मपत्र बनाने के लिए जन्म-समय लिखा जाता है और न्याय 'स्मृति' के अनुसार होता है। ये समस्त प्रमाण सूचित करते हैं कि भारतीय लेखन कला अत्यन्त प्राचीन काल में ही पूर्ण विकास की अवस्था में पहुंच चुकी थी।

अब हम 'मौखिक परम्परा द्वारा प्राचीन साहित्य के संरक्षण' सम्बन्धी यूरोपीय विद्वानों की भ्रामक धारणा पर संक्षेप में विचार करें। यह सत्य है कि वेद मौखिक पद्धति से एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते गए। किन्तु उनके मौखिक पठन-पाठन का कारण यह नहीं था कि उनकी लिखित प्रतियां उपलब्ध नहीं थीं, बल्कि उसके पीछे आर्य ऋषियों की यह वैज्ञानिक धारणा थी कि गुरु-मुख से उन्हें सीखे बिना उच्चारण या पाठ की शुद्धता तथा ऋचाओं की वैधिक शक्ति का रक्षण नहीं हो सकता। यज्ञ में वेद के मन्त्रों के शुद्ध प्रयोग की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए उनका शुद्ध उच्चारण गुरु के मुख से ही सीखा जाता था जिससे कि पाठ में उच्चारण की अशुद्धि न हो, जो यजमान के नाश के लिए वज्र की तरह समर्थ मानी जाती थी। वैदिक लोग, इसी कारण, न केवल मन्त्रों को, अपितु उनके पदपाठ, दो-दो पद मिलाकर कमपाठ तथा पदों के उलट-फेर से धन, जटा आदि पाठों को भी स्वररहित कण्ठस्थ करते थे। लिखित पुस्तक से पढ़ना निषिद्ध था। लिखित पुस्तक से पढ़नेवाला अधम पाठक माना जाता था। किन्तु वेद की लिखित प्रतियाँ विस्मृति में सहायता

के लिए अवश्य रहती थीं और व्याख्यान, टीका, व्याकरण, निरुक्त, प्रातिशाक्य आदि में सुभीते के लिए उनका उपयोग होता था । आज भी जो विद्या मुखस्थ हो, वही विद्या विद्या मानी जाती है । इन्हीं कारणों से आर्यों के मस्तिष्क और स्मृति को भी पुस्तकालय समझने की परिपाटी हो गयी तथा अनेक विषयों के ग्रन्थ सूत्रबद्ध शैली में लिखे गए, ताकि वे कण्ठस्थ किए जा सकें । यहाँ तक कि अंकगणित एवं बीजगणित के नियम और उदाहरण भी श्लोकों में लिखे गए ।

इस संबंध में डॉ० सक्सेना ने अपना निष्कर्ष देते हुए लिखा है कि "श्रुति को मौखिक सम्प्रदाय से स्थिर रखने के उपाय के कारण यह समझ लेना कि लिखने की कला का अज्ञान था, ठीक नहीं । आज भी कितनी ही चीजों को याद कर रखने का चलन है, यद्यपि लिखना भी साथ-साथ मालूम है । इस विवरण से यही एक निष्कर्ष संभव है कि भारतीय आर्य लोगों को लिखने की कला काफी प्राचीन काल से मालूम थी । यदि ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल के सूक्तों को ई०पू० 1200 का भी मान लिया जाए तो उस समय भी यह कला भारतीयों को ज्ञात थी।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि भारत में लेखन-कला का प्रचार वैदिक युग में भी था और भारत का प्राचीन वांगमय न केवल मौखिक परम्परा, अपितु लिखित परम्परा में भी सुरक्षित रहता आया था । इस निष्कर्ष की पुष्टि अनेक यूरोपीय पण्डितों के कथन से भी होती है । रॉथ ने लिखा है कि "लिखने का प्रचार भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही होना चाहिए, क्योंकि यदि वेदों के लिखित ग्रंथ विद्यमान न होते तो कोई पुरुष प्रातिशाख्य न बना सकता ।" बॉथलिंक के अनुसार "मेरे मत में साहित्य के प्रचार में लिखने का उपयोग नहीं होता था, परन्तु नए ग्रंथों के बनाने में इसको काम में लेते थे । ग्रन्थकार अपना ग्रन्थ लिखकर बनाता, परन्तु फिर उसे या तो स्वयं कण्ठस्थ कर लेता या औरों को कण्ठस्थ करा देता ।" इसी प्रकार बूलर ने, जो पहले भारतीय लेखन कला की प्राचीनता तथा भारतीयता का विरोधी था, लिखा है "इस अनुमान को रोकने के लिए कोई कारण नहीं है कि वैदिक समय में भी लिखित पुस्तकें मौखिक शिक्षा और दूसरे अवसरों पर सहायता के लिए काम में ली जाती थीं । अभी-अभी मिले हुए प्रमाणों से मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि भारतवर्ष में लिपि के प्रवेश का समय ई0पू0 की दसवीं शताब्दी या उससे भी पूर्व स्थिर करना होगा ।

मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि भारतवर्ष में लेखन-कला का प्रचार वैदिक युग में भी था, तो हमें उस प्राचीन युग के ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियाँ कहीं मिलती क्यों नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर ओझाजी के अनुसार यह है कि "भोजपत्र, ताड़पत्र या कागज पर लिखी हुई पुस्तकें हजारों वर्षों तक नहीं रह सकतीं, विशेषतः भारतवर्ष की जलवायु में। परन्तु पत्थर या धातु पर खुदे हुए अक्षर बहुत समय तक बच सकते हैं । यह कथन नितान्त सत्य है । हमारे देश में भोजपत्र, ताड़पत्र तथा कागज आदि पर प्राचीन लेखन-कला के प्रमाण चाहे भले ही उपलब्ध न हों, किन्तु धातु तथा पत्थरों पर खुदे संसार के प्राचीनतम लिपि-चिन्हों के नमूने उपलब्ध हो चुके हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से प्राप्त होनेवाले, ई0पू0 लगभग 4000 वर्ष पहले की "सिन्धु घाटी सभ्यता" के अवशिष्ट लिपि चिन्ह हैं । ये लिपि चिन्ह संसार के समस्त उपलब्ध लिपि-चिन्हों से प्राचीन

हैं। इनके प्राप्त होने के पूर्व, भारत में ई0पू0 पांचवीं शताब्दी तक ही लेखन कला के नमूने उपलब्ध थे, जिनके आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने तरह-तरह की भ्रान्त स्थापनाएं दी थीं। किन्तु, इसके उपलब्ध होने के बाद से भारत, लिपि-ज्ञान की प्राचीनता की दृष्टि से भी, संसार के अन्य सभी राष्ट्रों में असंदिग्ध रूप से अग्रणी स्वीकार किया जाने लगा है।

सिंधु लिपि

भारत की अब तक की ज्ञात प्राचीनतम लिपियों के विषय में जो भी जानकारियां मिली हैं, उनके आधार पर सिंधु सभ्यता की लिपि सर्वाधिक प्राचीन मानी गयी है। इसे हम सिंधु या सैंधव लिपि के नाम से अभिहित कर सकते हैं।[15] पर विद्वानों के अनुसार सिन्धु लिपि बहुत विकसित अवस्था में है। इसलिए अनुमान किया गया है कि सिन्धु लिपि से भी प्राचीन कोई लिपि रही होगी, जिसका विकसित रूप सिन्धु लिपि है। सिन्धु लिपि की खोज होने के पूर्व तक भारत की प्राचीनतम लिपि के रूप में ब्राह्मी एवं खरोष्ठी की गणना होती थी क्योंकि इन लिपियों के लेखों का पता विद्वानों को सिंधु लिपि के लेखों के प्राप्त होने के पहले ही लग चुका था। किन्तु जब सिंधु लिपि के लेख प्रकाश में आए तो ब्राह्मी एवं खरोष्ठी से भारत की प्राचीनतम लिपि होने का गौरव छिन गया। अब लोग निर्विवाद रूप से सिंधु लिपि को भारत में प्राप्त होनेवाली लिपियों में प्राचीनतम मानते हैं।



सिंधु लिपि की मुहरें-स्रोत अक्षर कथा-पृ-210

सिंधु लिपि को अभी तक पढ़ा जाना संभव नहीं हो पाया है। अभी तक इस दिशा में आंशिक सफलता ही मिली है। सिंधु लिपि में कोई द्रविड़ भाषा खोजता है, कोई वैदिक भाषा। इन दोनों के अलावा कोई तीसरी भाषा भी इसमें निहित हो सकती है।[16] 'परपोल' एवं 'महादेवन' ने कम्प्यूटर से इस लिपि को समझने की कोशिश की। उन्होंने



सिंधु लिपि के कुछ चिन्ह (बाएं) और उनमें से कुछ के विविध रूप-स्रोत अक्षर कथा-पृ-212

250 से 417 तक चिह्न इस लिपि में निकाले हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि उनकी लिपि वर्णमाला पर आधृत नहीं थी, बल्कि चित्रीय थी। इसके लेख, मुहरों, बर्तनों के ठीकरों, तांबे के छोटे-छोटे टुकड़ों आदि पर अंकित है। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० राधाकृष्ण चौधरी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास' में लिखा है कि अति प्राचीन काल में सिंधु घाटी सभ्यता में लेखन कला का आविष्कार हो चुका था, किन्तु लिपि चित्रकला की अवस्था में ही थी। इसका चिह्न समूचे शब्द अथवा वस्तु को प्रकट करता है।[17]

अंग्रेजों के शासन काल में सभ्यता और संस्कृति के इतिहास का अध्ययन आधुनिक स्वरूप में हुआ। स्टुअर्ट पिगॉट ने अपनी किताब प्रीहिस्टॉरिक इंडिया के पृष्ठ-14 पर उल्लेख किया है कि जॉन ब्रंटन और विलियम ब्रंटन भाईयों को 1856 में लाहौर से कराची तक रेल-लाइन बनाने का ठेका मिला। इन लोगों ने मुलतान-लाहौर रेल लाइन के निर्माण में हड़प्पा की ईंटों का बेदर्दी से इस्तेमाल किया। इस अवधि के ईंटों की मजबूती का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि करीब पांच हजार वर्ष पहले निर्मित ईंटों पर बनाए गए पटरियों पर आज के दिन में भी रेलगाड़ियां सौ मील की गति से गुजरती हैं। ईंटों की इस अंधाधुंध लूट के दौरान सभ्यता के कई पुरावशेष प्राप्त हुए। इनमें से जो सबसे अधिक आकर्षक पुरावशेष थे, उन्हें निर्माण कार्य में लगे मजदूरों ने और इंजीनियरों ने अपने पास रख लिया।[18]

मोहेंजो-दड़ो के पुरातात्विक महत्व का ज्ञान अकस्मात ही हुआ। पुरातत्व के उच्च पदाधिकारी स्व० राखल दास बनर्जी पाँच वर्षों से उन बारह स्तम्भों की खोज में घूम रहे थे जो सिकन्दर ने भारत से प्रस्थान करते समय अपनी कीर्ति के लिए यहाँ स्थापित करवाए थे। 1922 के शीतकाल में घोड़े पर शिकार खेलते समय रास्ता भूल जाने के कारण वे एक टीले पर जा पहुँचे। दैवयोग से उनको एक चकमक पत्थर (Flint) दिखाई पड़ा। उन्होंने अनुमान लगाया कि इस भू-गर्भ में कुछ प्राचीनता अवश्य दबी पड़ी है। वहीं पर कुषाण-कालीन बौद्ध स्तूप भी था। उत्खनन करने पर एक प्राचीन नगर की एक नहीं, सात परतें निकलीं तथा जो सामग्री मिली वह पूर्णतया नए प्रकार की थी। सर जॉन मार्शल के निरीक्षण में यह उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ। तदनन्तर ई0जे0 एच0 मैके के निदेशन में 1932 तक यह कार्य चलता रहा। यह सिन्धु नदी के पश्चिम की ओर सिन्ध प्रान्त के लारकाना जिले (वर्तमान पाकिस्तान) में स्थित है। इस नगर का नाम मोहेंजो-दड़ो अर्थात् 'मुर्दों की समाधि' अथवा 'मुर्दों का नगर' था। मोहेंजो-दड़ो से लगभग 400 मील उत्तर, रावी के पूर्वी किनारे पर मॉटगोमरी जिले (पाकिस्तान) में पुरातत्व विभाग के उप - निदेशक स्व० दयाराम साहनी ने 1921 में उत्खनन कार्य आरंभ किया तदनन्दर माधव स्वरूप वत्स ने भी किया। इस प्राचीन नगर का आधुनिक नाम हड़प्पा था। इसका प्राचीन नाम हरीयुपा (हरीत- स्वर्ण, युपा -स्तम्भ अर्थात् स्वर्ण स्तम्भों का नगर) जिससे हरप्पा तथा हड़प्पा हुआ।

जनरल कनिंघम (1814-93) ने 1856 में हड़प्पा की यात्रा करके वहां से कुछ मुहरें प्राप्त की थीं, जिन पर सिंधु लिपि के संकेत उत्कीर्ण थे। कनिंघम इन पुरावशेषों के महत्व को समझ तो गए थे, किन्तु वे हड़प्पा के अन्वेषण को आगे नहीं बढ़ा सके। उन्होंने 1875 में इन मुहरों में से कुछ को प्रकाशित करके ही संतोष कर लिया। सिन्धु सभ्यता के दो प्रमुख

स्थल मोहेंजो-दड़ो और हड़प्पा के आरंभिक अन्वेषण का श्रेय दो भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं को है । जनवरी, 1921 में दयाराम साहनी हड़प्पा में खुदाई आरंभ की और 1922 में राखलदास बनर्जी ने मोहेंजो-दड़ो में । बाद में पुरातत्व विभाग के डायरेक्टर जनरल जॉन मार्शल (1876-1958) ने यह काम अपने हाथ में ले लिया और इनके नेतृत्व में वर्ष 1931 तक खुदाई होती रही ।

हड़प्पा (जिला - मांटगोमरी, पाकिस्तान) और मोहेंजो-दड़ो (सिंध, पाकिस्तान) के प्रकाश में आने के बाद सिंधु सभ्यता के अन्य अनेक स्थल भी शनैः शनैः सामने आए । वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में ऑरेल स्टाइन (1862-1943) ने बलूचिस्तान में अनेक टीलों की खोज की । सिंधु सभ्यता के अन्वेषण में भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है । 1927 और 1931 के बीच ननिगोपाल मजूमदार (1893-1938) ने हड़प्पा और मोहेंजो-दड़ो के बीच के प्रदेश की छानबीन की और किरथर पहाड़ियों में खुदाई करते समय ही डाकुओं के हाथों उनकी मृत्यु हुई । मोहेंजो-दड़ो की खुदाई में भारतीय पुराविद माधस्वरूप वत्स तथा काशीनाथ दीक्षित मार्शल के सहयोगी थे । 1925 में दीक्षित ने सिंधु सभ्यता के दो और स्थल लोहुम्जो-दड़ो तथा लुमुजोनेजो खोजे । अर्नेस्ट मैके के नेतृत्व में 1935-36 में सिंध के नवाबशाह जिले के चन्हु-दड़ो नामक स्थान पर खुदाई हुई । इस स्थान से सिंधु सभ्यता के उत्तरकाल की महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई । 1945 में मॉर्टिमर व्हीलर ने हड़प्पा की पुनः विधिवत् खुदाई आरंभ की । इस खुदाई में बहुत सी नई चीजें मिलीं, जिनमें हड़प्पा का परकोटा विशेष महत्व का है ।

1947 में भारत-विभाजन के कारण मोहेंजो-दड़ो, हड़प्पा तथा सिंधु सभ्यता के अन्य अनेक स्थल भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं के हाथों से निकल गए । किन्तु सिन्धु सभ्यता केवल सिंधु प्रदेश में ही सीमित नहीं थी । भारतीय पुराविदों ने वर्तमान भारत में लगभग 200 ऐसे स्थान खोज निकाले हैं जो सिंधु सभ्यता के हैं । 1950-53 में राजस्थान की घग्घर (प्राचीन दृषद्वती) नदी के कछार में सिंधु सभ्यता के लगभग तीस स्थलों का पता चला है । अंबाला जिले के रोपड़ स्थान के नजदीक भी हड़प्पा संस्कृति के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं । काठियावाड़ (गुजरात राज्य) में भी सिंधु सभ्यता के अनेक स्थल मिले हैं । 1935 में सुरेन्द्रनगर के पास रंगपुर के टीलों की खुदाई आरंभ हुई थी । 1950 के बाद की खुदाई में रंगपुर के समीप के एक टीले से हड़प्पा संस्कृति के पुरावशेष मिले । उत्साहित होकर पुराविदों ने अन्य टीलों को भी खोदना शुरू किया। कई स्थानों पर सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले । इनमें प्रमुख हैं - साबरमती और भगवा नदियों के बीच, अरब सागर से 16 किलोमीटर दूर, लोथल । मिट्टी पर सिन्धु लिपि की मुहरों के ऐसे छापे भी लोथल से मिले हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं मिले थे । काल-निर्धारण की 'कार्बन-14 विधि' जांचन से ज्ञात हुआ है कि लोथल में 2200 से 1700 ई०पू० तक बस्ती रही । लोथल की खुदाई में ईंटों की बनी हुई 218 मीटर लंबी और 37 मीटर चौड़ी चतुर्भुजाकार एक गोदी (डॉकयार्ड) भी मिली है। गोदी को एक नहर द्वारा भगवा नदी से जोड़ा गया था । ऐसा जान पड़ता है कि समुद्री जहाज या नौकाएं भगवा नदी में आती थीं । मेसोपोटामिया की एक उत्कीर्ण मुद्रा भी लोथल से मिली हैं । इन प्रमाणों से यह प्रकट होता है कि समुद्री मार्ग से भी सुमेर-बेबीलोन और सिंधु प्रदेश के बीच गहरे व्यापारी संबंध थे।

सन् 1947 के बाद भारत में सिंधु सभ्यता के जो कई नए स्थल खोजे गए उनमें प्रमुख हैं उत्तरी राजस्थान में घग्घर के तट पर स्थित कालीबंगा । यहां हड़प्पा और पूर्व-सभ्यता काल के अवशेष मिले हैं । हड़प्पा की तरह यहां भी परकोटे से घिरा हुआ एक ऊंचा दुर्ग था । परन्तु यहां की सबसे महत्वपूर्ण खोज है हल से जोता गया एक खेत, जो प्रमाणित करता है कि सिंधुजन हल का प्रयोग करते थे । सिंधु सभ्यता के एक अन्य स्थल बणावाली (जिला हिसार, हरियाणा) से मिट्टी का बना हल का एक खिलौना भी मिला है । परन्तु यहां से सिंधु लिपि की मुहरें नहीं मिलीं । इसी तरह, उसी जिले के कुणाल स्थान से पूर्व-हड़प्पा काल की मुहरें तो मिली हैं, पर उन पर लिपि-संकेत उकेरे हुए नहीं हैं ।

हाल के वर्षों में धौलाबीरा (कच्छ, गुजरात) में एक विकसित हड़प्पा संस्कृति का उद्‌घाटन हुआ है । इस सिंधु नगर को परकोटे के भीतर एक विशिष्ट आयोजन और विन्यास के अनुसार बसाया गया था । यहां की एक अद्वितीय उपलब्धि है - सिंधु लिपि के दस बड़े चिन्हों से बना हुआ लेख । दुर्ग के उत्तरी द्वार के पास जमीन पर पड़े हुए लेख का प्रत्येक अक्षर 37 सेंमी. ऊंचा है । स्फटिक के टुकड़ों से निर्मित ये अक्षर तीन मीटर लंबे लकड़ी के एक तख्ते पर जोड़े गए थे । अनुमान है कि यह लेख नगर के प्रवेश द्वार के ऊपर 'नामपट्ट' की तरह लगा हुआ था।

आजादी के बाद सिंधु सभ्यता के और भी कई स्थलों पर उत्खनन कार्य हुआ । इनमें मुख्य हैं - सुरकोटड़ा (कच्छ), मांडा (जम्मु), भगवानपुरा (कुरुक्षेत्र) हुलास (सहरनपुर जिला, उ.प्र.) मीताथल (हरियाणा) आदि । सिन्धु सभ्यता के लोगों की आरंभिक बस्तियां बलूचिस्तान में देखने को मिलती हैं । बाद में सिंधु के कछार में हड़प्पा तथा मोहेंजो-दड़ो जैसे पूर्ण विकसित नगर प्रकट होते हैं । कालांतर में इन लोगों ने गंगा-यमुना के दोआब में भी अपने पांव पसारे और यहां बस्तियां बसाई । 1958 में दिल्ली से 45 किलोमीटर उत्तर-पूर्व की ओर, यमुना की एक सहायक नदी के किनारे, आलमगीर नामक स्थान पर हड़प्पा संस्कृति के अवशेष मिले हैं । पर आलमगीर हड़प्पा के लोगों की पूर्व की ओर अंतिम सीमा नहीं है। हड़प्पा की तरह के मृद्‌भांड गंगा के किनारे बुलंदशहर तथा सहारनपुर जिलों में भी मिले हैं । दक्षिण के पठार में भी कुछ स्थलों पर सिंधु सभ्यता के चिन्ह प्राप्त हुए हैं । इस तरह मोहेंजो-दड़ो तथा हड़प्पा के पाकिस्तान में चले जाने के बाद भी भारतीय पुराविदों के फावड़ों के लिए ऐसा विशाल भारतीय क्षेत्र विद्यमान है, जिसमें सिंधु सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं और आगे भी प्राप्त हो सकते हैं।

इस घाटी के उत्खनन् से लगभग तीन सहस्त्र मुद्राएँ व उनकी छापें प्राप्त हुई, जिन पर चित्र, चित्र व चिन्ह तथा केवल चिन्ह अंकित हैं, जो उस सभ्यता में विकसित लिपि का होना सिद्ध करते हैं । किसी भी गूढ़ लिपि का रहस्योद्‌घाटन करने के लिए उसकी भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य है । यदि लिपि का ज्ञान हो तो भाषा समझी जा सकती है परन्तु यदि शोधकर्ता भाषा व लिपि दोनों से ही अनभिज्ञ है तो अभिलेखों का पढ़ना असंभव है । इसी कारण कितने ही भारतीय एवं अन्य देशवासी लिपि-विशेषज्ञों ने मुद्राओं के रहस्योद्‌घाटन करने का दावा किया है परन्तु वह अभी तक सर्वमान्य नहीं हो सका। इसी प्रकार इतिहासकारों ने अपने विचार भी रखे कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता का रहस्य खुल जाए परन्तु इस पर भी विद्वान एकमत न हो सके ।

सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि सिंधु लिपि का ऐसा कोई लेख अब तक नहीं मिला है जिसमें 26 से अधिक संकेत हो । मुहरों पर लिपि-संकेतों के साथ पशु-पक्षियों की जो आकृतियां उत्कीर्ण हैं, उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि सिंधु लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी । यह भी पता चलता है कि जहां लिपि-संकेत दो पंक्तियों में हैं, वहां पर ब्यूस्त्रफीदान पद्धति से उन्हें लिखा गया है, यानी पहली पंक्ति दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी गई हैं, और दूसरी र. क्त बाईं ओर से दाईं ओर को । इसके अतिरिक्त सिंधु सभ्यता की लिपि में ऊपर से नीचे की ओर रुख बनाते हुए भी चित्र मिले हैं । इन तीनों प्रकार की लिपियों का उद्गम सूर्य की किरण, दांयें से बायें लिखी जाने वाली लिपि का उद्गम चन्द्र किरण तथा ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर लिखी जाने वाली लिपि का उद्गम अग्नि की लपटें हैं ।'[19] ज्ञात होता है कि सिंधु लिपि में लगभग 400 संकेतों का प्रयोग होता था, किन्तु एक ही संकेत के विविध रूपों को छोड़ दिया जाए तो इन संकेतों की संख्या लगभग 250 रह जाती है । अब, यह एक स्पष्ट बात है कि इतने अधिक संकेतों वाली लिपि वर्णमालात्मक तो नहीं हो सकती। यह भी स्पष्ट है कि चित्रलिपि या भावचित्रात्मक लिपि के लिए इतने संकेत पर्याप्त नहीं हैं । सुमेरी लिपि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आरंभ में उसमें लगभग 2000 संकेतों का प्रयोग होता था और कालांतर में उनकी संख्या केवल 900 रह गई । संकेतों की संख्या में कमी होते जाना लिपि के विकास को व्यक्त करता है । (चीनी लिपि इस नियम का अपवाद है) सिंधु लिपि के बारे में और एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिंधु सभ्यता के लगभग एक हजार वर्षों के दीर्घ जीवन-काल में भी इसके संकेतों के स्वरूपों में कोई विशेष परिवर्तन देखने में नहीं आता। सिंधु सभ्यता के अन्य पुरावशेष के निरीक्षण से भी यह बात सिद्ध होती है कि 2600 ई0पू0 के आसपास जिस सभ्यता के हमें दर्शन होते हैं, वह अपने विकास के उत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी, और अगले लगभग एक हजार वर्षों तक उसमें कोई विशेष परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। सिंधु लिपि का स्थायी स्वरूप भी इसी तथ्य की ओर इशारा करता है कि सिंधु सभ्यता लगभग एक हजार वर्षों तक वैसी की वैसी बनी रही।[20]

सिन्धु घाटी लिपि के रहस्योद्घाटन का प्रयास करनेवाले विद्वानों की लम्बी सूची है । इनमें श्री एल0ए0 बड्डेल, प्रो0 डब्ल्यू0 यम0 फ्लिण्डर्स पेट्री, डा0 जी0 आर0 हंटर, रेवरेण्ड यच0 हेरास, श्री सुधांशु कुमार रे, डा0 प्राण नाथ, श्री राज मोहन नाथ, स्वामी शंकरानन्द, हर पी0 मेरेग्गी, एस्को परपोला, सीमो परपोला, काकेन्निमी एवं पी0 आल्टो, डा0 फतेह सिंह, श्री एस0आर0 राव, श्री यम0वी0एन0 कृष्णाराव, श्री यल0एस0वाकणकर, श्री डी0यम0 बरुआ, श्री यस0 पर्णवितान, श्री एरस्ट डब्लोफर और हेवेसी, श्री बांके बिहारी चक्रवर्ती, रुसी विद्वान, बी0 हरोज्नी, श्री जॉन न्यूबेरी आदि ।

कुछ पुराविदों ने इस लिपि की आंतरिक रचना का तथा इसके संकेतों का यांत्रिक विश्लेषण करने का भी प्रयत्न किया है । गाड, सिडनी स्मिथ, लांगडन और हंटर इनमें प्रमुख हैं । गाड ने सिंधु लिपि में प्राचीन भारोपीय भाषा की कल्पना की है और इसके तीन संकेतों को पुत्र शब्द के अर्थ में पढ़ने का प्रयत्न किया है । हंटर ने सिंधु लिपि तथा ब्राह्मी लिपि में कुछ

साम्य खोजने की कोशिश की । गाड तथा हंटर दोनों ही सिंधु लिपि को अक्षरात्मक मानते हैं । इसके विपरीत, सिडनी स्मिथ ने किसी भी भाषा का सहारा न लेते हुए इसके संकेतों का यांत्रिक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने अपना अध्ययन इस लिपि के निर्धारक-संकेतों, पूर्व-सर्ग तथा अंत्य-सर्ग संकेतों को तय करने तक ही सीमित रखा ।[21]

वी0एन0कृष्णराव भारतीय पुरातत्व-सर्वेक्षण में तकनीकी सहायक के पद पर रहे हैं । उनका अन्वेषण प्रसिद्ध पशुपति मुद्रा से आरंभ होता है । इस मुद्रा के बीच में एक योगी या शिव की आकृति है । ऊपर लिपि संकेत हैं और दाएं-बाएं व नीचे पशु आकृतियां उत्कीर्ण हैं । नीचे बाईं ओर का कोना टूटा हुआ है । वे यह स्वीकार करते हैं कि सिंधु लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी गयी है । अत: इस तथाकथित पशुपति मुद्रा में वे उन्हीं पशु आकृतियों पर विचार करना चाहते हैं जिनका मुंह बाईं ओर को है । शेर को, जिसका मुंह दाईं ओर है, वे कोई महत्व नहीं देते हैं । इस आकृति के बाईं ओर, खंडित भाग में, एक और पशु आकृति रही है । अब कृष्णराव इस मुद्रा को निम्नलिखित रूप में पढ़ते हैं । दाईं ओर के पशु हैं -महिष (भैंस), खड्ग (गैंडा) । ऊपर कोने में मनुष्य (नर) की आकृति है । बाईं ओर शद्रि (हाथी) और पुन: मनुष्य की आकृति है । कृष्णाराव का कहना है कि मुद्रा में ऊपर उत्कीर्ण पांच लिपि संकेत इन पांच पशुओं के संस्कृत नामों के आद्याक्षर हैं, जैसे महिष(म), खड्ग (ख), नर (ना), शद्रि (श) और नर (न) । इन आद्याक्षरों से मखनाशन शब्द बनता है, जो कृष्णराव के अनुसार इन्द्र का द्योतक है ।[22]

एक अन्य मुद्रा में योगी की इसी प्रकार की आकृति है और इसके ऊपर पांच लिपि-संकेत हैं । इस मुद्रा लेख को पढ़ते हुए कृष्णराव दाईं ओर के दो संकेतों को छोड़ देते हैं और शेष तीन संकेतों को ईशान (रुद्र) पढ़ते हैं । इस मुद्रा में कोई पशु आकृति नहीं है, इसलिए कृष्णाराव ने यहां आद्याक्षर-सिद्धांत का सहारा नहीं लिया है । एक ही तरह की आकृति एक मुद्रा में मखनाशन (इन्द्र) और दूसरी मुद्रा में ईशान (रुद्र) कैसे हो सकती है ? जाहिर है कि उनके अन्वेषण में गड़बड़ है ।[23]

लोथल के उत्खनन कार्य का नेतृत्व करनेवाले सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डा0 शिकारिपुर रंगनाथ राव ने भी सिंधु लिपि के बारे में अपना अन्वेषण प्रकाशित किया है । राव का मत है कि आरंभिक हड़प्पा संस्कृति (2500-1900) ई.पू. की सिंधु लिपि में 390 चिह्न थे, जिनमें लगभग 40 मौलिक चिह्न थे । किन्तु परवर्ती हड़प्पा संस्कृति (1900-1600ई.पू.) की सिंधु लिपि में सिर्फ 20 मौलिक चिह्न रह गए थे । इसका अर्थ यह हुआ कि परवर्ती सिंधु लिपि वर्णमालात्मक बन चुकी थी । राव का कहना है कि यह पश्चिम एशिया की सेमेटिक लिपि के प्रभाव से हुआ । उन्होंने कनानी और फिनीशियन जैसी उत्तरी सेमेटिक लिपियों के संकेतों में और परवर्ती सिंधु लिपि के संकेतों में साम्य भी खोजा है । इतना ही नहीं, उन्होंने सेमेटिक व्यंजनमाला के ध्वनिमानों की सहायता से ही परवर्ती सिंधु लिपि के 20 चिह्नों की वर्णमाला को पढ़ने का भी प्रयत्न किया है । राव का कहना है कि परवर्ती सिंधु लिपि की वर्णमाला में 14 या 15 व्यंजनाक्षर हैं और 5 स्वराक्षर। हम जानते हैं कि सेमेटिक लिपियों में स्वराक्षर नहीं थे। लेकिन यूनानियों ने उत्तरी सेमेटिक लिपि के आधार पर अपनी भाषा के लिए जब

नई लिपि बनाई, तो उसमें उन्होंने स्वरों के लिए चिह्न बना लिए थे । राव का अध्ययन यदि सही है तो हमें कहना पड़ेगा कि परवर्ती हड़प्पा संस्कृति के लोगों ने भी ऐसा ही किया था।[24] और इस सिंधु वर्णमाला की भाषा क्या थी । अपने अध्ययन से राव इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि सिंधु लोगों की भाषा भारत-यूरोपीय परिवार की तथा भारत-ईरानी वर्ग की थी। साथ ही वे यह जानकारी भी देते हैं कि जो 360 शब्द उन्होंने खोजे हैं, उनमें 30 शब्द भारत यूरोपीय भाषा के नहीं हैं । राव इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि सिंधु लिपि की भाषा वेदों की प्राचीन संस्कृत भाषा से काफी मिलती है । उन्होंने कुछ मुहरों पर राजा के लिए पाल, पालक, त्र आदि शब्द भी खोजे हैं । राव ने सिंधु वर्णमाला का सेमेटिक लिपियों के साथ साम्य दरसाने के लिए जो तालिका दी है, उसमें उन्होंने ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षर दिए हैं । अत: लगता है कि ब्राह्मी वर्णमाला परवर्ती सिंधु वर्णमाला से बनी थी । पर वे भी यह स्वीकार करते हैं कि सिंधु लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी ।[25] सिन्धु घाटी लिपि का रहस्योद्घाटन उस समय तक प्रमाणित सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कोई द्विभाषिक अथवा त्रैभाषिक अभिलेख प्राप्त नहीं हो जाता ।

स्वामी शंकरानन्द का अध्ययन

रामकृष्ण मिशन, वेदांत मठ, कलकत्ता से जुड़े, स्वामी शंकरानन्द का अध्ययन काफी महत्वपूर्ण रहा। स्वामीजी की धारणा है कि यहां की संस्कृति वैदिक थी तथा उन आर्यों से भिन्न थी जो आक्रमणकारी थे । पर्यटनशील जाति इतने महान् ग्रन्थ (वेद) की रचना कर ही नहीं सकती । आप यह भी मानते हैं कि वेद पुजारियों के ग्रन्थ थे, जिसमें समाज के एक भाग का वर्णन है । इसके अतिरिक्त वेदों में दुखों व कठिनाइयों का वर्णन है जिससे सिद्ध होता है कि सिन्धु-घाटी के निवासी विजेता नहीं अपितु पराजित व्यक्ति थे ।

भाषा व लिपि पर स्वामी जी ने बड़ा गंभीर शोध किया है । प्राचीन पश्चिम एशिया के अनेक देशों की लिपियों का अध्ययन किया तथा तुलनात्मक खोज करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि सिन्धु-घाटी लिपि ही पश्चिम एशिया के देशों की लिपियों की जन्मदाता है, क्योंकि उनमें यहाँ की लिपि के बहुत से चिन्ह पाए जाते हैं । आप के कथनानुसार इस लिपि में लगभग 400 चिन्ह हैं, 118 संश्लिष्ट वर्ण हैं तथा 469 शब्द हैं ।

स्वामी जी ने कुछ मुद्राओं का रहस्योद्घाटन तो तंत्राभिधान (तांत्रिक शब्दकोष) द्वारा किया तथा कुछ वर्षों पश्चात् एक वर्णमाला प्रस्तुत की । उर (मेसोपोटामिया) से प्राप्त एक मुद्रा को, जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है तथा जिसका कमांक 122946 है, स्वामी जी ने 'कथ' पढ़ा है।

सिन्धु लिपि और कैथी

सिन्धुकैथी लिपि की प्राचीनता और व्यापकता के संबंध में कोशी अंचल के एक जाने-माने विद्वान श्री हरिशंकर श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक ''अंगिका लिपि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'' में विस्तृत रूप से चर्चा की है । उन्होंने लिखा है कि नदी-घाटी सभ्यताओं में नगरों की स्थापना के साथ-साथ लिपियों का जन्म होता दिखाई देता है । पाषाण युग में ही चित्र लिपियों

एवं भाव-लिपियों का अस्तित्व देखने को मिलता है। भारत की अब तक की ज्ञात प्राचीनतम लिपियों के विषय में जो भी जानकारियां मिली हैं, उसके आधार पर सिन्धु सभ्यता की लिपि सर्वाधिक प्राचीन मानी गयी है। पर विद्वानों के अनुसार सिन्धु लिपि बहुत विकसित अवस्था में है, इसलिए अनुमान किया गया है कि सिन्धु लिपि से भी प्राचीन कोई लिपि रही होगी जिसका विकसित रूप सिन्धु लिपि है। वह लिपि संभवत: कायस्थों के आदि पुरुष भगवान चित्रगुप्त द्वारा आविष्कृत कैथी लिपि है।

शंकरानन्द स्वामी द्वारा रचित चर्चित किताब " दि इन्डस पीपुल स्पीकर्स" के पृष्ठ-65 पर वर्णित है कि प्राचीन सिन्धु सभ्यता की एक तन्त्र पट्टिका या मुहर के शब्दों को तांत्रिक आधार पर 'कथ' पढ़ा है। इनके अनुसार "कैथ" उपनिषद काल की एक कृषि-जीवी और मसीजीवी जाति थी। सिन्धु घाटी की चित्र लिपि को पढ़ने समझने के क्रम में भागलपुर के स्वर्गीय निर्मल कुमार वर्मा ने संथालों के गुरु की सहायता से जो वर्णमाला तैयार की है, उसमें संथाली भाषा में 'क' और 'थ' की आकृति वही है जिसे शंकरानन्द स्वामी ने 'कथ' पढ़ा है। भाषाविद् श्री राजेश्वर झा के अनुसार कैथी लिपि इसी 'कथ' जाति से संबंधित है जो समस्त उत्तर भारत की जनलिपि के रूप में अद्यावधि प्रचलित है (मिथिला भारती, मार्च -जून, 1969, पृष्ठ-45)

ब्राह्मी लिपि की उत्पति

हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में यह बात आम तौर से पाई जाती है कि जिस किसी भी चीज की उत्पत्ति कुछ अधिक प्राचीन या अज्ञेय हो उसके निर्माता के रूप में बड़ी आसानी से 'ब्रह्मा' का नाम ले लिया जाता है। संसार की अन्य पुरालिपियों की उत्पत्ति के बारे में भी यही देखने को मिलता है कि प्राय: उनके जनक कोई न कोई दैवी पुरुष ही माने गए हैं। हमारे यहां भी 'ब्रह्मा' को लिपि का जन्मदाता माना जाता रहा है, और इसीलिए हमारे देश की इस प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा है। अशोक ने अपने लेखों की लिपि को 'ध म्मलिपि' का नाम दिया है, उसके लेखों में कहीं भी इस लिपि के लिए ब्राह्मी नाम नहीं मिलता। लेकिन बौद्धों, जैनों तथा ब्राह्मण-धर्म के ग्रंथों के अनेक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि ही रही होगी।[11]

भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम एशिया के निवासियों से सहस्त्रों वर्ष पूर्व से थे। यह भी सत्य है कि संसार की कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जिसमें दूसरी लिपि का सम्मिश्रण न हो। यह अवश्य कहा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि का विकास सिन्धु-घाटी-लिपि तथा उत्तरी सेमिटिक (फिनीशियन) लिपि व अरमायक लिपि के सम्मिश्रण से हुआ। अब ब्राह्मी के 'अ' को लिया जाए, जिसकी बदली गई है। फिनीशियन, अरमायक तथा मोआब इत्यादि लिपियां एक ही वंश (सेमिटिक) की हैं जो दायें से बायें लिखी जाती थीं। उन्हीं में से फिनीशियन लिपि के 'अ' ने भारत में आकर अपनी दिशा बदल ली। वहीं के एक अक्षर 'दलेथ' ने भारत में आकर दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम 'द' तथा 'ध' हो गये। इसकी दिशा बाद में परिवर्तित की गई। 'बेथ' अर्थात् 'ब' चौकोण होने के कारण वैसा ही रहा। अरमायक के 'त' 'प' 'श'

को उल्टा खड़ा कर दिया गया । इस प्रकार पश्चिम एशिया के आठ अक्षर ब्राह्मी में सम्मिलित हुए । सिन्धु-घाटी-लिपि के 417 चिन्हों में से कुछ चिन्ह ब्राह्मी के अक्षरों के समान प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी ध्वनियों के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका रहस्योद्घाटन पूर्णरूप से सर्वमान्य नहीं हो सका।

ब्राह्मी लिपि के रहस्योद्घाटन का एक अपना छोटा सा इतिहास है । मिस्र तथा मेसोपोटामिया में शैम्पोलियाँ तथा रालिन्सन के परिश्रम से वहां की प्राचीन लिपियों का रहस्योद्घाटन रोसेटाव बेहिस्तून के शिलालेखों के प्राप्त होने से पूर्ण हो चुका था, परन्तु भारत में ऐसा कोई शिलालेख प्राप्त न हो सका जिस पर ज्ञात-लिपि तथा प्राचीन लिपि में एक ही लेख अंकित हो । गूढ़ लिपियों के पढ़ने में उन देशों में तो विद्वान प्राचीन काल से अर्वाचीन की ओर चले परन्तु भारत में अर्वाचीन से प्राचीन काल की ओर चले । जैसे अन्य देशों के पाश्चात्य विद्वानों के परिश्रम से अतीत की जानकारी हुई उसी प्रकार भारत में भी प्राचीन काल की लिपियों को पढ़ने का श्रेय वहीं के विद्वानों को मिला ।

जैनों के पण्णवणासूत्र तथा समवायांगसूत्र में 16 लिपियों के नाम दिए गए हैं, जिनमें से पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) का है । भगवतीसूत्र में सर्वप्रथम बंभी (ब्राह्मी) लिपि को नमस्कार करके (नमो बंभीए लिविए) सूत्र का आरंभ किया गया है ।[12]

प्राकृत में लिखित जैनागमों में सबसे प्राचीन ग्रंथ 'आचारांगादि एकादश अंग सूत्र' है । भगवान महावीर की वाणी को उनके सुयोग्य शिष्य 'आर्य सुधर्मा' ने इन 11 ग्रंथों में मुख्य रूप से संकलित किया है। एकादश अंग सूत्रों में पंचम विवाह पंनत्ति (व्याख्या प्रज्ञाप्ति) जो भगवती सूत्र के नाम से विशेष प्रसिद्ध है, सबसे बड़ा ग्रंथ है । इसके आरंभ से ही 'नमो बंभिए लिवीए' शब्दों द्वारा ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है । इसके पूर्ववर्ती चतुर्थ संग सूत्र समवायांग के 18वें समवाय में 18 प्रकार की लिपियों का वर्णन इस प्रकार है - बंभीए एं लिबीए अट्ठारस विहे लेख विहाणे प. तं. बंभी, जवणीलिया (जवाणाणिया) दोसाऊरिया, खरोट्टिया, खरसविया, पहाराइया, उचत्तरिया, अक्खर, पुहिया, भोगवयता-वेणतिया, णिण्हइया, अंकलिवि, गणिअलिवि, गंधव्वलिवी, भूयलिवि, आदंशलिवि, माहेसरीलिवी, दामिलिवी, बोलिंदिलिवी (या पोलिंदिलिवी) जैनागम में वर्णित लिपियों में बंभी या खरोट्टिया (ब्राह्मी और खरोष्ठी) ही प्रचलित थी । अन्य लिपियां अदृश्य थीं ।[13]

जैन ग्रंथों के उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋिषभदेव से हुई । उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दाहिने हाथ से लिखने की जो विधि सिखलाई, वह प्रथम सीखनेवाली स्नातिका के नाम से ब्राह्मी कहलायी । ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षर 46 थे । संभव है, भाषा उस समय तक केवल बोलचाल की प्राकृत ही रही हो और उसमें रि, र्, लृ और ल अक्षरों का उपयोग न होता हो ।[14]

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' के लिपिशाला संदर्शन परिवर्त' खंड में जिन चौंसठ लिपियों की चर्चा की गई है, वे हैं - (1) ब्राह्मी (2) खरोष्ठी (3)पुष्करसारी (4)अंगलिपि (5)बंगलिपि (6) मगधलिपि (7) मंगल्यलिपि (8)अंगुलीयलिपि (9) शकारलिपि (10)

ब्रह्मवलिलिपि (11)पारुष्यलिपि (12) द्रविड़लिपि (13) किरातलिपि (14) दाक्षिण्यलिपि (15) उग्रलिपि (16) संख्यालिपि (17) अनुलोम लिपि (18) अवमूर्धलिपि (19)दरदलिपि (20)खाष्यलिपि (21) चीनलिपि (22) लूनलिपि (23) हूनलिपि (24) मध्याक्षरविस्तरलिपि (25) पुष्यलिपि (26) देवलिपि (27) नागलिपि (28) यक्षलिपि (29)हून लिपि (30)गंधर्वलिपि (31) किन्नरलिपि (32) महोगरलिपि (33) असुरलिपि (34) गरुड़लिपि (35) मृगचक्रलिपि (36) वायसरुतलिपि (37) भौमदेवलिपि (38) अंतरिक्षदेवलिपि (39) उत्तरकुरुद्वीपलिपि (40) अपरगोदनीयलिपि (41) पूर्व विदेह लिपि (42) उत्क्षेपलिपि (43) निक्षेपलिपि (44) विक्षेपलिपि (45) प्रक्षेपलिपि (46) सागरलिपि (47) बज्रलिपि (48) लेखनप्रतिलेखलिपि (49) अनुप्रदुतलिपि (अशीघ्रलिपि) (50) शास्त्रवर्तलिपि (51) उत्क्षेपावर्तलिपि (53) निक्षेपावर्तलिपि (54) पादावर्तलिपि (55) द्विरुत्तरपदसंधि लिपि, यावद्यशोत्तरपदसंधि (दो वर्णों से लेकर दस वर्णों को उत्तरोत्तर एक में मिलाकर लिखने की लिपि (56) अध्याहारणीलिपि (57)सर्वरुतसंग्रहणीलिपि (58) विद्यानुलोमविमिश्रितलिपि (59) रिजितपस्तप्तालिपि (रिशियों के तप से तपी हुई लिपि) (60) रोचनामालिपि (देखने में सुंदर लगने वाली लिपि) (61) धरणीप्रेक्षणीलिपि (62) गगनप्रेक्षणीलिपि (63) कसर्वौजधि निल्यन्दालिपि (64)सर्वसारसंग्रहणीलिपि तथा (65) विभूतरत्नग्रहणीलिपि । इसमें अंग लिपि, अंगुलीय लिपि, मगध लिपि, भंगल्य लिपि और पूर्व विदेह लिपि एक ही लिपि है, जिनका क्षेत्र-विशेष के अनुसार भिन्न नामाकरण किया गया है । शकार लिपि और ब्रह्म लिपि भी एक ही है, जो तत्कालीन शकन लिपि, यवन लिपि और भार लिपि के नाम से जानी जाती थी । उसी प्रकार विक्षेप लिपि और अंकित प्रक्षेप लिपि एक ही है । उन्हें लेख प्रतिलेख लिपि और अनुप्रदत्त लिपि भी कहा जाता था । द्विरुत्तरपदसंधिलिपि कोई व्यवहारिक लिपि नहीं है बल्कि दो या अधिक वर्णों एवं पदों के सामासिक एवं संधि गढ़ने की विधा थी ।[15]

668 ई0 में लिखित एक चीनी बौद्ध विश्वकोष 'फा-वान-शु-लिन' में ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का उल्लेख मिलता है । इसमें लिखा है कि लिखने की कला का शोध दैवी शक्तिवाले तीन आचार्यों ने किया है, उनमें सबसे प्रसिद्ध ब्रहमा हैं, जिसकी लिपि बाईं ओर से दाहिनी ओर को पढ़ी जाती है ।[16]

आर.शाम शास्त्री ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि देवताओं की उपासना के लिए जिन सांकेतिक चिह्नों का उपयोग होता था, उन्हीं से ब्राह्मी लिपि के अक्षरों का निर्माण हुआ है । जगमोहन वर्मा ने 1913-15 में 'सरस्वती' पत्रिका में ब्राह्मी लिपि के बारे में कुछ लेख लिखे थे, जिनमें उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि वैदिक चित्रलिपि या उससे निकली किसी सांकेतिक लिपि से ब्राह्मी लिपि निकली है । लेकिन शास्त्री और वर्मा के ये दोनों सिदधांत किसी ठोस प्रमाण पर आधारित नहीं है, इसलिए इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता । अब तो अधिक संभव यही जान पड़ता है कि सिंधु लिपि से ही ब्राह्मी का विकास हुआ है । वस्तुत: सिंधु लिपि में और ब्राह्मी लिपि के उपलब्ध लेखों में लगभग एक हजार वर्षों का अंतर है ।[17] क्षेत्र विशेष के अनुसार किसी एक लिपि के अनेक नाम संकेत हो गए हैं । पूर्व विदेह लिपि विदेह राज्य (मिथिला) के पूर्व ओर की लिपि है ।[18]

बौद्ध ग्रंथों के उल्लेखों से पता चलता है कि आरंभ में अशोक अपनी क्रूरता के कारण 'चंडाशोक' कहलाता था, परन्तु बाद में उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और वह धार्मिक कार्य करने लगा तो उसे 'धर्माशोक' कहा जाने लगा । अशोक के केवल दो धर्मलेखों यानी गुजर्रा (मध्य प्रदेश में दतिया के पास) तथा मस्की (जिला रायचूर, कर्नाटक) के लघु-शिलालेखों में ही उसका 'असोक' नाम देखने में आता है । शेष सभी धर्मलेखों में उसे 'देवानं पियेन पियदसिन लाजिन' (देवताओं के प्रिय और सभी पर कृपा करनेवाले राजा) कहा गया है । स्पष्ट है कि यह नाम उसने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद ही धारण किया होगा। अशोक का समकालीन श्रीलंका का तिस्स (शिष्य) राजा भी अपने नाम के साथ 'देवानांप्रिय' जोड़ता था। तिस्स राजा के समय में ही अशोक का पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार करने के लिए श्रीलंका पहुंचे थे।[39]

अशोक के लिए कहीं-कहीं 'अशोकवर्धन' नाम भी मिलता है । उसके एक धर्मलेख में उसे 'मगध का राजा' कहा गया है । परन्तु उसके साम्राज्य के लिए उसके लेखों में अधिकतर 'पृथ्वी' या 'जंबूद्वीप' शब्द ही मिले हैं, वहां उसका राज्य निश्चित रूप से था ही । उसने अपने लेखों में 'अपराजित' राज्यों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है । दक्षिण भारत के चोल, पांड्य, केरल तथा ताम्रपर्णी (श्रीलंका) देश अशोक के साम्राज्य के बाहर थे । उसके लेखों में एशिया के कई 'योन' (यूनानी) राजाओं तथा मिस्र के तुरमाय या तुलमाय (टॉलमी) राजा का भी उल्लेख मिलता है ।[40]

अ आ इ उ ए ओ अं
क ख ग घ च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
प फ ब भ म य र ल व
श ष स ह का कि की कु कू
के को कृ ग्र त्या म्य ष्ठि व्यो स्ति
स्वा ह्य र्व भ्यु ह्म ख्म द्री थै

अशोक की ब्राह्मी लिपि के अक्षर-स्रोत
अक्षर कथा, पृष्ठ-242

अशोक के ब्राह्मी लेखों में केवल छह मूल स्वरों के संकेत पाए जाते हैं - 'अ', 'आ', 'इ', 'उ', 'ए' और 'ओ' । इनमें ऋ एवं लृ तथा इनके दीर्घ रूपों के लिए अक्षर नहीं हैं । इनमें 'ई','ऊ','ऐ', तथा 'औ' के मूल स्वरों के लिए भी अक्षर नहीं हैं। व्यंजनों के साथ जुड़नेवाली स्वरों की मात्राओं के रूप में अशोक के लेखों में केवल 'आ', 'इ', 'ई', 'ए', 'ऐ', तथा 'ओ' की मात्राएं मिलती हैं । 'औ' के स्वतंत्र स्वर-संकेत या व्यंजनों के साथ लगनेवाली इसकी मात्रा के लिए अशोक के लेखों में कोई चिह्न नहीं देखने में आता । अनुस्वार के लिए एक बिंदु का प्रयोग हुआ है, जो प्राय: अक्षर की दाहिनी ओर कुछ ऊपर रखा जाता था । विसर्ग का चिह्न भी अशोक के किसी लेख में नहीं पाया जाता ।[41]

क का कि की के को कु कू कं
ल ला लि ली ले लो लु लू लं

अशोक के ब्राह्मी व्यंजनों के साथ स्वर मात्राएं जोड़ने की व्यवस्था (AK-P-242)

डा0 सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार ब्राह्मी समस्त भारतीय लिपियों की जननी है। इस लिपि का प्राचीनतम दृष्टान्त अशोक के शिलालेख में उपलब्ध होता है। जहां-जहां भी अशोक के राज्य में राजमार्ग गए वहां उसके धर्म लेखों के साथ उसके लिपिकाएं (लेखक या शिल्पी) और ब्राह्मी भी पहुंची। पश्चिमोत्तर भारत के अतिक्ति अन्य भारतीय प्रदेशों के उनके सारे लेख ब्राह्मी में ही हैं। इस ब्राह्मी लिपि में भी प्रादेशिक स्वरूपान्तर देखने को नहीं मिलता। इससे यह ज्ञात होता है कि अशोक के समय प्रायः संपूर्ण भारतवर्ष में ब्राह्मी लिपि का व्यवहार था और सामान्य जन भी इस लिपि को पढ़ लिख सकते थे। अशोक के लेखों की सार्वदेशिकता का पता इस बात से भी चलता है कि उसने अपने सभी लेखों में सर्वत्र उस काल की बोलचाल प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है। इस प्राकृत या पाली में प्रांत के अनुसार थोड़ा सा अन्तर जरूर दृष्टिगोचर होता है, परन्तु है यह प्राकृत भाषा ही।[12]

ऐसा लगता है कि अशोक के काल में ब्राह्मी जो अंग की भी लिपि थी अपना पृथक स्वतंत्र स्वरूप धारण करने का उपक्रम कर रही थी या कर चुकी थी। अशोक की ब्राह्मी लिपि की लगभग सारी विशेषताएं तत्कालीन अँगिका (कैथी) लिपि में समाहित हो चुकी थी। स्थानीय लिपि होने के कारण इनमें मूल, दीर्घ और संयुक्त स्वर कम ही हैं। इनके मूल स्वर हैं - 'ओ', 'इ', 'उ', 'ए'। दीर्घ स्वर हैं - आ, ऐ तथा इसके संयुक्त स्वर हैं 'ओ', 'औ'। इसमें ऋ का प्रयोग नहीं है। इसमें 'ङ', ण, ष, ब, स अक्षर नहीं होते। इस तरह की ईसा की पहली शताब्दी में अपने शिशु पैरों से चलती हुई सातवीं सदी में प्रौढ़ हुई अँगिका लिपि (कैथी) की आज तक की यात्रा बहुत ही रोमांचकारी है।[13]

ब्राह्मी लिपि : ईसा की पहली सदी तक

ब्राह्मी का घसीटेदार स्वरूप : अशोक के 'लिपिकर' और 'शिल्पी' उसके एक विशिष्ट उद्येश्य के संदेश लेकर इन्हें अंकित करने के लिए उसके राज्य के विभिन्न प्रदेशों में पहुंचे थे। अतः अशोक के लेखों की ब्राह्मी लिपि में यत्र-तत्र थोड़े से अक्षर रूपांतर होने पर भी उसकी ब्राह्मी लिपि को हम सार्वदेशिक और राजकीय ही मानते हैं। परन्तु अशोक के बाद के लेखों में हमें यह एकरूपता देखने को नहीं मिलती। अशोक के बाद पहली बार हमें सिक्कों पर भी ब्राह्मी अक्षर या लेख मिलने लगते हैं। अब लेख केवल राजाओं और सम्राटों के ही नहीं, बल्कि सामान्य जनों के भी मिलने लगते हैं। ऐसी स्थिति में संपूर्ण भारतवर्ष में ब्राह्मी लिपि का एक सा ही रूप कायम रह पाना संभव नहीं था। बिहार के बुद्धगया के समीप की बराबर गुफाओं में अशोक के जो लेख हैं, इन गुफाओं से कुछ दूरी पर इसी पहाड़ी पर नागार्जुनी नाम की गुफाएं हैं, जिनमें अशोक के पौत्र 'देवानाँपिय दसरथ' के लेख मिलते हैं। अशोक और दसरथ के इन लेखों में काफी साम्य है, परन्तु 'अ', 'य' और 'व' अक्षरों में कुछ भिन्नता भी है। दसरथ के लेख कुछ घसीटेदार भी दिखाई देते हैं।[14]

इस काल का भारहुत (नागौद जिला-मध्य प्रदेश), बुद्धगया, पभोसा (इलाहाबाद जिला, उ0प्र0) अयोध्या तथा 'हाथीगुंफा लेख' अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह उड़ीसा की

राजधानी भुवनेश्वर के पास खंडगिरी-उदयगिरी पर्वत पर दो मंजिल की एक चौड़ी गुफा पर खुदा हुआ है। इस गुफा एवं लेख का निर्माण खारवेल की अग्रमहिषी ने कलिंग के श्रमणों के लिए किया था। लेख लगभग 15 गुना 5 वर्ग फूट जगह घेरे हुए है और अब बड़ी कठिनाई से ही पढ़ा जा सकता है। इसकी भाषा प्राकृत है, जो बौद्ध ग्रंथों की पालि से मिलती-जुलती है। पहली बार 1885 में डा0 भगवान लाल इन्द्रजी ने इस लेख का पाठ तैयार किया था। 1927 में डा0 काशी प्रसाद जायसवाल ने पुन: इसका एक शुद्ध पाठ प्रकाशित किया। इस लेख के काल के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। ब्यूहलर और ओझाजी ने इसमें मौर्य संवत् पढ़कर इसका काल 157 और 147 ई0पू0 के बीच निश्चित किया था। आजकल कई पुरालिपिविद इसे ई0 पू0 पहली शताब्दी का मानते हैं। यह जैनधर्म का सबसे प्राचीन शिलालेख है, परन्तु आश्चर्य है कि किसी भी प्राचीन जैनग्रंथ में राजा खारवेल का नामोल्लेख नहीं मिलता।[15]

बुद्धगया के मंदिर के चारों ओर आज भी कुछ प्राचीन वेदिका स्तंभ मौजूद हैं। ये स्तंभ ईसा पूर्व दूसरी सदी में तैयार हुए थे। इन्हें तैयार करते समय शिल्पकारों ने इन पर ब्राह्मी लिपि का एक-एक अक्षर खोद दिया था, ताकि बाद में इन्हें जोड़ने में सुविधा हो। इसलिए बुद्ध गया के इन स्तंभों पर हमें ब्राह्मी वर्णमाला के कुछ अक्षर मिल जाते हैं।[16]

सन् 1956 ई0 में अंबाला जिले (हरियाणा) के सुघ (प्राचीन स्रुघ्न) स्थान से मिट्टी का बना हुआ एक अद्भुत खिलौना मिला है। इस खिलौने में एक बालक को बैठा हुआ और गोद में लिखने की एक तख्ती लिए हुए दरशाया गया है। खिलौने का वह भाग जिसमें बालक का सिर था, टूट गया है। तख्ती ठीक उसी प्रकार की है, जैसी आजकल के बच्चे भी इस्तेमाल करते हैं। यह खिलौना शुंगकाल (ईसा पूर्व दूसरी सदी) का है। खिलौने की उस तख्ती पर चार पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि के अक्षर अंकित हैं। ये अक्षर हैं : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ:। ये बारखड़ी (द्वादशाक्षरी) के स्वराक्षर हैं। चारों पंक्तियों में इन्हीं 12 अक्षरों को दोहराया गया है। बालक ने अपने बाएं हाथ से तख्ती पकड़ी है और दाएं हाथ की एक उंगली एक अक्षर के नीचे रखी है। तख्ती पर अंकित सभी पंक्तियों के कुछ अक्षर मिट गए हैं, पर चारों पंक्तियों के निरीक्षण से पूरे 12 स्वराक्षर स्पष्ट हो जाते हैं।[17]

इन 12 स्वराक्षरों से यह भी स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व दूसरी सदी में अभी ब्राह्मी की वर्णमाला में ऋ, ॠ, ऌ और दीर्घ ॡ स्वराक्षरों का समावेश नहीं हुआ था। ब्राह्मी वर्णमाला के बारे में यह जानकारी बड़े महत्व की है। सुघ से प्राप्त यह खिलौना अब नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है।[18]

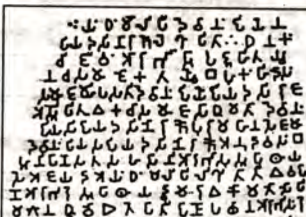
सिकंदर के 325 ई0पू0 में पश्चिमोत्तर भारत से ही वापस चले जाने के तुरंत बाद चंद्रगुप्त (324-300 ई0पू0) ने नंदवंश का तख्ता उलटकर मौर्यवंश की स्थापना की। चंद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिंदुसार राजगद्दी पर बैठा और बिंदुसार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अशोक 372 ई0 पू0 में राजा बना। ज्ञात होता है कि राजगद्दी के लिए शुरू में काफी झगड़ा हुआ

था क्योंकि अशोक का राज्याभिषेक उसके गद्दी पर बैठने के चार साल बाद 268 ई०पू० में हुआ । इसके बाद उसने लगभग 37 साल तक भारत के एक विशाल भू-भाग पर राज्य किया। उसने कलिंग को भी अपने राज्य में शामिल कर लिया था।

ब्राह्मी की शैलियां : ईसा की पहली से चौथी सदी तक

अशोक के लेखों में ब्राह्मी अक्षरों को पत्थरों पर खोदने के पहले 'लिपिकर' खड़िया से उन्हें पत्थरों पर लिख देते थे । बाद में धीरे-धीरे कलमों का भी इस्तेमाल होने लगा । इस 'कलम शैली' का प्रभाव प्रस्तुत काल में स्पष्ट दिखाई देता है । कलम के इस्तेमाल के कारण हाथ तेजी से चलने लगा, तो ब्राह्मी के अक्षर कुछ घसीटदार बनने लगे । तेजी से और घसीटदार लिखने के कारण इस काल की ब्राह्मी लिपि में कलात्मक वक्र, त्रिकोण तथा चतुष्कोण दिखाई देते हैं । इतना होने पर भी ब्राह्मी अक्षरों के मुख्य ढांचे में कोई खास परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। यदि कोई पहली शताब्दी ई0 के ब्राह्मी अक्षरों को पहचानता हो तो कुछ प्रमुख बातों की जानकारी हो जाने पर, वह इस काल के ब्राह्मी लेखों को भी आसानी से पढ़ सकता है ।[19]

डा0 विन्सैन्ट स्मिथ ने अशोक के अभिलेखों का वर्गीकरण करके उनका समय भी निर्धारित किया है । जूनागढ़ (गुजरात) में गिरनार के रास्ते पर एक बड़ी चट्टान है, जिस पर सम्राट अशोक ने लगभग 257 ई0पू0 में अपनी चौदह घोषणायें ब्राह्मी अक्षरों में अंकित करवाई। यह शिला भूमि तल से बारह फुट ऊंची तथा 75 फुट परिधि की है । यह खड़ी पक्तियों द्वारा विभाजित की गई है । लेख सामने की ओर है। पीछे की ओर के अभिलेख क्षत्रप वंशीय राजा रुद्रदामन् ने जो जयदामन् का पुत्र था और जिसने महाक्षत्रप के रूप में सौराष्ट्र पर 40 वर्ष (130 से 170 ई0 सन् तक) राज्य किया, संस्कृत भाषा में अंकित करवाये थे । यह संस्कृत भाषा के प्राचीनतम लेख थे । वैदिक साहित्य में 64 वर्ण थे परन्तु प्राकृत, जिसमें यह शिलालेख उत्कीर्ण है, में 47 अक्षर व्यवहार में आते थे क्ष, त्र, ज्ञ, भी वर्ण मान लिए गए वैसे यह संयुक्त अक्षर है।

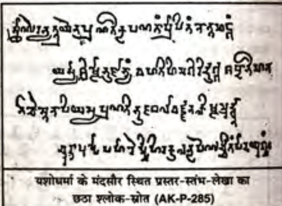


अशोक के गिरनार का प्रथम शिलालेख-स्रोत (AK-P-245)

ब्राह्मी लिपि की विशेषताएं : पहली विशेषता है, अक्षरों की प्रमुख खड़ी रेखाओं का शिरचिह्न । मथुरा के क्षत्रपों के लेखों में पहली बार हमें खड़ी रेखाओं के सिरे कुछ मोटे

दिखाई देने लग जाते हैं। कुषाणों, पश्चिमी क्षत्रपों और सातवाहनों के लेखों में भी ये मोटे सिर दिखाई देते हैं । फिर इन सिरों पर एक छोटी-सी आड़ी लकीर भी लगने लगी । बाद में सिर पर लगनेवाली यह आड़ी लकीर कुछ मोटी हो गई, जैसा कि इस काल के मथुरा के लेखों में देखने को मिलता है । फिर भी, यह शिरश्चिह्न वर्गाकार हो गया - पहले ठोस, तदनंतर खोखला । ठोस वर्गाकार सिरवाले अक्षर मालव प्रदेश के लेखों और आरंभिक गुप्त लेखों में मिलते हैं, जबकि खोखले वर्गाकार सिरवाले अक्षर वाकाटक लेखों में मिलते हैं । दूसरी ओर यह शिरश्चिन्ह ठोस तथा खोखले त्रिकोण का रूप धारण करता है । ठोस त्रिकोणाकार सिर वाले अक्षर विजयगढ़ तथा नागार्जुनकोंडा के लेखों में मिलते हैं ।[50]

दूसरी विशेषता है, अक्षरों के साथ लगनेवाली स्वर-मात्राओं की नई शैली । 'आ' की मात्रा दाईं ओर को एक आड़ी लकीर नहीं रह जाती, अब वह लकीर ऊपर की ओर कुछ टेढ़ी होती है । 'इ' और 'ई' की मात्राएं कुछ गोलाकार हो जाती हैं और कई कलात्मक रूप ध ारण करती हैं । अक्षरों के नीचे लगनेवाली 'उ' की मात्रा अब आड़ी रेखा न रहकर कुछ नीचे की ओर झुक जाती है ।



यशोधर्मा के मंदसौर स्थित प्रस्तर-स्तंभ-लेखा का छठा श्लोक-स्रोत (AK-P-285)

'ऊ' की दूसरी मात्रा पहली मात्रा से बाईं ओर को झुकती हुई जोड़ी जाती है । 'ऋ' की मात्रा 'ऊ' की दूसरी मात्रा जैसी ही जुड़ती है । 'ए', 'ऐ', 'ओ' और 'औ' की मात्राएं कुछ ऊपर की ओर उठती हैं । कुषाण कालीन मथुरा के लेखों में और कुछ अन्य लेखों में अनुस्वार के लिए पहले की तरह केवल एक बिंदु न होकर, एक छोटी सी आड़ी लकीर दिखाई देती है ।[51]

तीसरी विशेषता यह है कि त्वरा और कुछ घसीट में लिखने के कारण इस काल के ब्राह्मी अक्षर कुछ नए रूप धारण करते हैं ।

चौथी विशेषता है, अक्षरों को कलात्मक बनाने की कोशिश के कारण उनकी स्वर मात्राओं में हुआ परिवर्तन । अक्षरों को कलात्मक बनाने की प्रवृत्ति के कारण मात्राओं में गोलाइयां आई हैं, खड़ी रेखाएं ऊपर या नीचे झुक गई हैं और कुछ अक्षरों के बीच में मोड़ आ गए हैं । जग्गरूयपेट तथा नागार्जुनकोंडा के लेख ब्राह्मी सुलेखन के बढ़िया नमूने हैं ।

इस काल की ब्राह्मी लिपि में हमें कुछ नए अक्षर भी मिलते हैं । रुद्रदामन के लेख में पहली बार 'ऋ' स्वर के लिए धन चिह्न या क्रॉस की तरह का अक्षर मिलता है । 'सिद्म' शब्द में आए हुए हलंत 'म' (म्) के लिए भी व्यवस्था देखने को मिलती है । इस 'म्' के लिए 'म' अक्षर का ही इस्तेमाल होता था, परन्तु वह 'द्ध' की दाईं ओर कुछ नीचे रखा जाता था और

कुछ मोटा होता था। 'ग' और 'घ' के साथ जुड़ा हुआ 'ड.' अक्षर भी जब मिलता है, जो के आकार का है। अब हमें 'उपध्मानीय' एवं 'जिह्वामूलीय' ध्वनियों के लिए भी अक्षर मिलते हैं। ओझाजी ने इनके बारे में लिखा है, 'क' और 'ख' के पूर्व विसर्ग का उच्चारण विलक्षण होता था और जिह्वामूलीय कहलाता था। इसी तरह 'प' और 'फ' के पहले विसर्ग का उच्चारण भी भिन्न था और उपध्मानीय कहलाता था। जिह्वामूलीय के न्यारे चिह्न थे, जो कभी-कभी प्राचीन पुस्तकों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों में मिल आते हैं, जो अक्षरों के ऊपर, बहुधा उनसे जुड़े होते हैं, और उनमें भी अक्षरों की नाईं समय के साथ परिवर्तन होना पाया जाता है'' (भारतीय प्राचीन लिपि, पृष्ठ- 45) पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि दक्षिण के गुफालेखों में 'इ' के लिए खड़े दंड के दोनों ओर दो बिंदु वाला चिह्न मिलता है। प्रस्तुत काल के लेखों में इसी प्रकार का चिह्न 'ई' के लिए इस्तेमाल किया हुआ दिखाई देता है। इलाहाबाद के समुद्रगुप्त के स्तंभलेख में भी अक्षर मिलता है (कौएलक शब्द में) इसके लिए सांची तथा मथुरा के लेखों में भी यह अक्षर पाया जाता है।[32]

इस समय के दो-चार प्रमुख लेखों का उदाहरण प्रस्तुत करना उचित होगा। इस काल में उत्तर भारत से कुषाणवंशी राजाओं के बहुत से लेख मिलते हैं। ई0पू0 दूसरी शताब्दी में हूणों द्वारा भगाए जाने के पहले कुषाणों के पूर्वज तिएन-शान (पर्वत) के परे एक घुमंतू कबीले के रूप में रहते थे। हूणों द्वारा खदेड़े जाने के बाद ये पूर्वी चीनी तुर्किस्तान में बस गए। बाद में इन्होंने यूनानियों के बाख्त्री राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इनके नेतृत्व में अब कई घूमंतू कबीले में भी आकर मिल गए थे। इतिहास में इनके पहले राजा का उल्लेख कद्फिस -प्रथम (15-45 ई0) के नाम से मिलता है। इस राजा ने अपने को शाहानुशाह कहा है। शकों तथा पार्थवों (पह्लवों) का पराभव करके इन्होंने अपना प्रभाव कश्मीर तथा काबुल की उपत्यकाओं पर भी कायम किया था। उसके बेटे विमं-कदफिस (45-78 ई0) ने अपने साम्राज्य में पंजाब, सिंध तथा मथुरा के प्रदेश भी जोड़ लिए। राजधानी उसकी बदख्शाँ में थी। लेकिन कुषाण साम्राज्य का चरम विकास कणिष्क (78-101 ई0) के समय में ही हुआ। कणिष्क ने पाटलिपुत्र (पटना) पर भी चढ़ाई की थी और वहां से वह प्रसिद्ध बौद्ध पंडित अश्वघोष को अपने साथ ले गया था। मगध तथा मध्यदेश में उसके क्षत्रप राज्य करते थे। पुरुषपुर (पेशावर) नगर बसाकर वह बदख्शाँ से अपनी राजधानी वहां ले आया। पश्चिम में उसके साम्राज्य की सीमा अराल सागर तक थी और उधर चीनी तुर्किस्तान में खोतन तक। कणिष्क बौद्धधर्म का अनुयायी था और उसने बौद्धों की चौथी संगीति कश्मीर में कराई थी। बहुत से विद्वान मानते हैं कि उसने 78 ई0 में 'शक संवत' चलाया। उसके सिक्कों पर उसका नाम 'शाहानुशाह कनिष्क' मिलता है। वह अपने को 'देवपुत्र' भी कहता था। कणिष्क के बाद उसके वंशजों के बारे में हमें बहुत कम ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। उसके उत्तराधिकारियों में वशिष्क (102-106), हुविष्क (106-138 ई.) तथा वासुदेव प्रथम (लगभग 152-176 ई.) राजाओं के नाम मिलते हैं।[33]

कुषाणों की ब्राह्मी लिपि का विकास पूर्व काल के शक क्षत्रपों (शोडास, रंजुबुल आदि)

की लिपि से ही हुआ है । कुषाण लेखों में कुछ अक्षर ऊपर नीचे से दब गए हैं या छोटे हो गए हैं, जैसा कि 'ह', 'य', 'ण', 'म', 'च' आदि अक्षरों को देखने से स्पष्ट हो जाएगा। इसमें कुछ अक्षरों के अंश त्रिकोणाकार हो गए हैं, जैसे कि 'व', 'ख' तथा 'म' में । ब अक्षर वर्गाकार बन गया है और 'थ' वृत्ताकार । 'ए' और 'ओ' की ऊपर लगनेवाली मात्राएं क्रमशः दाएं, बाएं तथा दोनों ओर कुछ ऊपर की ओर उठ गई हैं । 'च' का पेट बाईं ओर कुछ अधिक निकला है।[24]

खरोष्ठी लिपि

इस लिपि का जन्म और विकास अरमायक द्वारा लगभग ई0पू0 की छठी शताब्दी में उन जातियों ने किया, जो भारत (आधुनिक अफगानिस्तान व पाकिस्तान के कुछ भाग) के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में निवास करती थीं । इनमें बैक्ट्रिया, सीथिया, पर्शिया, भारत आदि देशों के निवासी सम्मिलित थे । इन जातियों के व्यापारियों को ईरान की राजकीय तात्कालिक कीलाकार लिपि का प्रयोग करने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती थी । ईरानी व्यापारी भी कीलाकार लिपि को प्रयोग न कर अरमायक का प्रयोग करते थे । व्यापारी पर्यटनशील होते थे। इस कारण अरमायक भी पर्यटनशील हो गई और विभिन्न देशों में जाकर वहाँ की भाषा व प्रचलित लिपि पर अपना प्रभाव डाल कर भिन्न-भिन्न लिपियों की जन्मदात्री बन गई । दूसरी शताब्दी में इसका स्थान ईरान की पहलवी लिपि लेने लगी।

खरोष्ठी लिपि के वर्ण

अ इ उ ए ओ अं क ख ग
घ च छ ज झ ञ ट
ठ ड ढ ण त थ द ध
न प फ ब भ म
म य र ल व श
ष स ह कि खि चि
ठि णि ति भि शि सि गु चु तु उ
ते ने मे पे

निठहग्र निडषप रस मरशिद्रयप्रि योप्रि नवदे

खरोष्ठी लिपि के वर्णन-स्रोत लेखन कला का इतिहास- (P-285)

खरोष्ट का अर्थ गधे की ओठ वाला होता है । एक मत के अनुसार गधे की खाल पर लिखे

जाने से इसे ईरानी में खरपोस्ट कहते थे और उसी का अपभ्रंश रूप खरोष्ठ है । एक अन्य मत यह है कि आरमेइं भाषा में खरोट्ठ शब्द था और उसी के भ्रामक साम्य के आधार पर संस्कृत का खरोष्ठ शब्द बना । हेब्रू भाषा के शब्द खरोशेथ, जिसका अर्थ है लिखावट, से खरोष्ठी बना । काशनगर (कश्मीर के उत्तर में) को संस्कृत में खरोष्ठ कहते हैं, अत: लिपि जो वहाँ अधिक प्रचलित थी, खरोष्ठी कहलाई । बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर, जिसका अनुवाद चौथी शताब्दी के आरंभ में चीनी भाषा में हुआ, के अनुसार किअ-लु-सेटो (दिव्य शक्ति रखनेवाले आचार्य) के नाम पर खरोष्ठी पड़ा ।

इस लिपि के रहस्योद्घाटन की अपनी स्वयं एक कहानी है जिसमें कई पात्र हैं । कर्नल जेम्स टॉड ने बैक्ट्रिया, ग्रीक, शक, पार्थिया व कुषाण वंशीय राजाओं के कई प्राचीन सिक्कों तथा अभिलेखों का संग्रह किया था । 1830 में जनरल वेन्टूरा ने मानिकियाल के स्तूप को खुदवाया। उसमें कई सिक्के तथा दो खरोष्ठी लिपि के अभिलेख प्राप्त हुए । 1834 में कैप्टेन कोर्ट को एक स्तूप से कई सिक्के तथा एक अभिलेख प्राप्त हुआ । 1838 में मैसन ने अपनी जान संकट में डालकर स्वयं शहबाजगढ़ी की 80 फुट ऊंची चट्टान पर अंकित अशोक की 14 घोषणाओं की प्रतिलिपियां तैयार करके प्रिंसेप के पास भेजीं। साथ ही साथ उसने कई सिक्कों पर अंकित राजाओं के नाम एक ओर की ग्रीक लिपि में पढ़े जिनका नाम दूसरी ओर खरोष्ठी में अंकित था । उन नामों को भी प्रिंसेप के पास प्रमाणित कराने भेजा, जो प्रिंसेप ने ठीक बतलाये । अब इतनी प्रगति हो गई कि विद्वान यह जान गए कि जो लिपि अंकित है, वह दाएँ से बाएँ पढ़ी जाएंगी तथा उसकी भाषा प्राकृत व पाली है । इन प्रयत्नों से 17 अक्षर पहचान लिए गए । नॉरिस ने अन्य 6 अक्षर पहचाने । शेष प्रिंसेप ने पहचान कर अपने सहयोगी विद्वानों द्वारा 1840 में इस लिपि के 37 अक्षरों की एक वर्णमाला तैयार की ।

अभिलेख के कुछ शब्द इस प्रकार हैं : ''देवन प्रियो द्रशिरय सर प षड नि ग्र ह ठ नि'' अर्थात् ''देवताओं के प्रिय, दर्शन करने में प्रिय, सर्व धार्मिक सम्प्रदायों प्रवरजितों और गृहस्थों'' ,,

लेकिन ये सारे मत अटकलें ही हैं, इनमें से किसी को भी ठोस प्रमाणों से सिद्ध नहीं किया जा सकता। खरोष्ठी लिपि, सेमेटिक लिपियों की तरह, दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी । इसके कुछ अक्षर ही नहीं, बल्कि इनके ध्वनिमान भी आरमेई लिपि से मिलते हैं । इसलिए अनेक विद्वान ऐसा मानते हैं कि खरोष्ठी का निर्माण आरमेई लिपि के आधार पर हुआ है । ईरान के हखामनी शासन काल में संपूर्ण पश्चिम एशिया में आरमेई भाषा तथा लिपि का प्रचार था । तक्षशिला से भी आरमेई लिपि में लिखा हुआ एक शिलालेख मिलता है । हखामनी शासकों का गंधारदेश पर भी शासन था । आरमेई लिपि सेमेटिक भाषाओं को लिखने के लिए तो ठीक थी, परन्तु भारोपीय परिवार की प्राकृत भाषा को इस लिपि में लिखना संभव नहीं था । इसलिए, ऐसा जान पड़ता है कि ई0पू0 पांचवीं शताब्दी में गंधार देश में, आरमेई लिपि का अनुकरण करते हुए, इस नई लिपि को जन्म दिया गया । आरमेई लिपि में केवल 22 अक्षर थे और उसमें स्वरों की अपूर्णता (जैसा कि सभी सेमेटिक लिपियों में देखने को मिलता है) थी और उसमें ह्रस्व दीर्घ का कोई भेद नहीं था । इसलिए प्राकृत (पालि) के लिए नई लिपि का निर्माण करते

समय कुछ नए स्वर तथा उनकी मात्राओं के लिए संकेत गढ़ने पड़े । खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उसके निर्माण में ब्राह्मी लिपि का प्रभाव काफी रहा है। इतना होने पर भी ब्राह्मी की तरह खरोष्ठी के स्वरों तथा उनकी मात्राओं में ह्रस्व दीर्घ का भेद नहीं है । इसमें संयुक्ताक्षर भी बहुत कम मिलते हैं । कुछ संयुक्ताक्षरों का पढ़ना तो अब भी संदेह से मुक्त नहीं है । वस्तुत: जिस प्रकार हमारे देश में आज भी एक कामचलाऊ महाजनी लिपि चलती है, उसी की तरह खरोष्ठी का भी जन्म मामूली पत्र-व्यवहार, बही-खातों के हिसाब आदि के लिए ही हुआ था।[26]

भारत में इस्लामी शासन के साथ जिस प्रकार अरबी-फारसी लिपि के आधार पर दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जानेवाली एक लिपि उर्दू के लिए रची गई, उसी प्रकार भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर ईरानियों का अधिकार हो जाने पर वहां के ई0पू0 पांचवीं शताब्दी में आरमेई लिपि के आधार पर दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जानेवाली एक नई लिपि खरोष्ठी का निर्माण किया गया था । सम्राट अशोक (272-232) ई0पू0 के मानसेहरा (हजारा जिला, सरहदी सूबा, पाकिस्तान) तथा शाहबाजगढ़ी (पेशावर जिला, पंजाब, पाकिस्तान) के शिलालेख इस खरोष्ठी में हैं । इन दो को छोड़कर अशोक के अन्य सारे लेख ब्राह्मी लिपि में हैं । सिकंदर के भारत आक्रमण (326 ई0पू0) के बाद पश्मोत्तर प्रदेश तथा बाख्त्री (बल्ख) पर यूनानियों का शासन स्थापित हुआ, तो उन्होंने भी अपने सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि के अक्षरों का उपयोग किया । यूनानियों से भी पहले ईरानी शासकों ने चांदी के सिक्कों पर खरोष्ठी के अक्षरों के ठप्पे देखने को मिलते हैं । यूनानियों के बाद शक, क्षत्रप, पह्लव, कुषाण तथा औदुंबर राजाओं ने भी इस लिपि का इस्तेमाल किया ।[27]

खरोष्ठी के कुछ अन्य संलिष्ट वर्ण

क्कि	रिव	गु	ग्र	चि	जु
द्र	द्रि	ठि	णि	ति	तु
ते	त्म	थं	दे	द्र	पु
ध्र	नु	ने	नो	पि	ब्र
म्म	मु	शि	ये	पो	बु
श्रु	षे	सि	स्रो	स्त	स्त्रि

खरोष्ठी के कुछ अन्य संलिष्ट वर्ण-स्रोत ले. क. का इति- (P-104)

1892 में एक फ्रांसीसी यात्री द्युत्य द रॅन्स ने खोतन से खरोष्ठी लिपि में भोजपत्र पर लिखी हुई धम्मपद की एक प्रति प्राप्त की थी । यह भोजपत्र पर लिखी हुई सबसे प्राचीन उपलब्ध पुस्तक है । प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता ऑरेल स्टाइन (1862-1943) ने मध्य एशिया के मासी-माजार, नीया, लोन-लन् आदि स्थानों से काष्ठपट्टिकाओं पर लिखे हुए सैकड़ों खरोष्ठी लेख प्राप्त किए हैं । इन काष्ठपट्टिकाओं की लंबाई 7.5 से 15 ईंच और चौड़ाई 1.5 से 2.5 ईंच हैं । कुछ चौकोर पट्टिकाएं भी मिली हैं । ऐसी पट्टिकाओं को जब पत्र

रूप में भेजा जाता था, तो इन्हें दूसरी पट्टिकाओं से ढककर उन पर मुहर लगा दी जाती थी। चर्मपट पर अंकित खरोष्ठी लेख भी नीया से मिले हैं। खरोष्ठी लिपि के ये सारे लेख प्राकृत में हैं जो धम्मपद की प्राकृत से काफी मिलती-जुलती है। चीनी तुर्किस्तान से ही एक पट्टिका पर खरोष्ठी लिपि में संस्कृत के चार श्लोक प्राप्त हुए हैं। संस्कृत के लिए खरोष्ठी लिपि के प्रयोग का यह एक मात्र उपलब्ध उदाहरण है। लोन-लन् से कागज पर खरोष्ठी के लेख प्राप्त हुए हैं।[28]

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' (ईसा की दूसरी शताब्दी में रचित) के दसवें अध्याय में 64 लिपियों के नाम गिनाए गए हैं, जिनमें पहला नाम 'ब्राह्मी' का और दूसरा 'खरोष्ठी' का है। इन 64 नामों में अधिकतर नाम कल्पित यानी अवास्तविक ही जान पड़ते हैं। 668 ई० में लिखे गए एक चीनी बौद्ध विश्वकोष 'फा-वान-शु-लिन' में भी ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों के उल्लेख मिलते हैं। उसमें खरोष्ठी लिपि के बारे में लिखा है, "किअ-लु(किअ-लु-से-टो क-लु-से-टो, ख-रो-स-ट, खरोष्ठ) की लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को पढ़ी जाती है। ब्रह्मा और खरोष्ठ भारतवर्ष में हुए। ब्रह्मा और खरोष्ठ ने अपनी लिपियां देवलोक से पाई। ललित विस्तर और चीनी विश्वकोष के इन्हीं उल्लेखों के आधार पर प्रसिद्ध पुरालिपिविद ब्यूहलर ने इस लिपि को खरोष्ठी नाम दिया था।[29]

खरोष्ठी के लेख शिलाओं, धातु-फलकों, काष्ठ-पट्टिकाओं, सिक्कों, भूर्जपत्रों, तथा कागज पर मिलते हैं और इन सभी लेखन-सामग्रियों पर इस लिपि का सामान्यत: एक सा ही स्वरूप देखने को मिलता है। यों यह लिपि स्याही और कलम से लिखने के लिए अधिक उपयुक्त थी। पिछली शताब्दी के पूर्वार्ध में कर्नल जेम्स टॉड, जनरल वेंटुरा, अलेक्जेंडर बर्न्स आदि पुराविदों ने बाख्त्री, यूनानी, शक, पह्लव तथा कुषाण शसकों के ढेरों सिक्कों का संग्रह किया था। इन सिक्कों में से कई पर एक तरफ यूनानी लिपि के अक्षर हैं और दूसरी तरफ खरोष्ठी लिपि के। आरंभ में खरोष्ठी लिपि के बारे में क़ाफी अटकलें लगाई गई। इन सिक्कों के यूनानी अक्षरों को आसानी से पढ़ा जा सकता था। अफगानिस्तान में पुरातत्वान्वेषण में जुटे हुए मेसन महाशय ने सबसे पहले सिक्कों के एक तरफ के यूनानी नामों की तुलना दूसरी ओर के खरोष्ठी अक्षरों से करके दूसरी तरफ की इबारतों का अध्ययन किया, तो उन्हें 'मिनांडर', 'एपोलोडोटस', 'हर्मिअस', 'बेसिलियस' (राजा) और 'सोटेरस' (रक्षक) शब्दों के खरोष्ठी अक्षरों को पहचानने में सफलता मिली। मेसन ने अपनी इस खोज की जानकारी जेम्स प्रिन्सेप को दी। प्रिन्सेप (1799-1840) उस समय ब्राह्मी और खरोष्ठी के अन्वेषण में जुटे थे। उन्होंने ब्राह्मी लिपि का तो उद्घाटन किया ही, उन्हें खरोष्ठी लिपि का भी उद्घाटन करने का श्रेय प्राप्त है। मेसन के अक्षरमानों के आधार पर प्रिन्सेप को आरंभ में 12 राजाओं के नामों तथा 6 पदवियों को पढ़ने में सफलता मिली। इसके साथ यह भी पता चला कि यह लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी। लेकिन प्रिन्सेप आरंभ में इस लिपि की भाषा को गलती से पहलवी समझ बैठे थे। 1838 में पहली बार दो बाख्त्री राजाओं के सिक्कों पर प्राकृत (पालि) में लेख देखने को मिले, तो यह सिद्ध हो गया कि खरोष्ठी लेखों की भाषा पालि है। इसके बाद तो खरोष्ठी लिपि के अक्षरों को पहचानना और भी अधिक आसान हो गया। स्वयं प्रिन्सेप ने इस लिपि के 17 अक्षर पहचाने थे। बाद

में जनरल कनिंघम (1914-93) ने खरोष्ठी की संपूर्ण वर्णमाला तथा संयुक्ताक्षरों को पहचानने का काम पूरा कर दिया।[30]

दूसरी शताब्दी की खरोष्ठी लिपि :

खरोष्ठी लिपि–दूसरी श०

खरोष्ठी लिपि-दूसरी शताब्दी- स्रोत ले.क. का इति- (P-105)

उत्तरी सिन्ध के प्रान्त (पाकिस्तान) के भावलपुर नगर के उत्तर पश्चिम में स्थित सुइ बिहार का जीर्ण स्तूप है। यहाँ से एक ताम्र-पत्र, जिस पर खरोष्ठी में चार पंक्तियाँ अंकित थीं, उत्खनन में जी0 ईट्स (G. Yeats) को 1869 में प्राप्त हुआ। जे0 डाउसन ने इसका अनुवाद 1870 में किया। डा0 वान् विन्क ने इस ताम्र पत्र की तिथि निर्धारित की। कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष में इसको अंकित कराया गया था। कनिष्क का काल विवादास्पद है। इस अभिलेख की भाषा पाली +प्राकृत है तथा संस्कृत का प्रभाव है।

अभिलेख का लिप्यंतरण इस प्रकार है (दायें से बायें पढ़ा जायेगा)

"महरजस्य रजतिराजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य संवत्सरे एकदशे सं0 101 दइसिकस्य मसस्य दिवसे अठविशे दि 2044 उत्र दिवसे भिक्षुस्य नगदतस्य संखं केटिस्व अचर्य दमत्रति शिष्यस्य अचर्यभव प्रशिष्यस्य यठिं अरोपयतो इहदमने। विहर स्वमिनि उपसिक बलनंदि किछुबिनि बल जय मत च इमं यठि प्रतिठनं कपजं च अनुपरिवरं ददंति सर्व सत्वनं। हित सुखय भवतु।"

अभिलेख का अनुवाद :

"देवपुत्र महाराजाधिराज कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष -सं (वत्) 101 के दइसिक माह के अट्ठाइसवें दिन, भिक्षु नागदत्त ने, जो विधि का प्रचारक, दमत्रि (गुरु) का शिष्य, गुरु भव के शिष्यों का शिष्य था, विहार की उपासिका दमनः बालनन्दी को मानने वाली और उसकी माँ, बालजय की पत्नी को यह स्थान प्रदान कर दिया ताकि सबको सुख व हर्ष प्राप्त हो।"

खरोष्ठी के शिलालेख तथा ताम्रलेखादि ब्राह्मी का प्रचार अधिकांशतः विदेशी राजाओं के सिक्कों तथा शिलालेखों आदि में मिलता है। सिक्कों में यूनानी, शक क्षत्रप, पार्थिअन, कतिपय कुशानवंशी राजा तथा औदुम्बर आदि एतद्देशीय वंशों के राजाओं के सिक्कों पर के दूसरी तरफ के प्राकृत-लेख इस लिपि में मिलते हैं। खरोष्ठी फारसी की तरह दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी और इसके ग्यारह वर्ण, क,ज,द,न,ब,य,र,व,प,स और

ह समान उच्चारण वाले अरमइक् अक्षरों से मिलते-जुलते हैं । खरोष्ठी की उत्पत्ति के संबंध में ओझाजी ने अनुमान किया है कि "संभव है कि ईरानियों के राजत्वकाल में उनके अधीन के हिन्दुस्तान के इलाकों में उनकी राजकीय लिपि अरमइक् का प्रवेश हुआ हो और उसी से खरोष्ठी लिपि का उद्भव इस देश में हुआ हो, जैसे कि मुसलमानों के राज्य के समय फारसी लिपि का, जो उनकी राजकीय लिपि थी, इस देश में प्रवेश हुआ और उसमें कुछ वर्ण बढ़ाने से उर्दू लिपि बनी ।"

खरोष्ठी लिपि–दूसरी श०

रे क्ष व स स च नि क स त्र पु व दे स ज रा ति ज र स ज र ह म

शो वि ठ अ सेव दि स स म स क सि द द १२० सं शे द क ए

स टि के ख सं स त द ग न स क्षु भि सेव दि त्र ड ४४२० दि

प रो अ ठिं म स च्च पि प्र व भ र्म व अ स च्च शि ति त्र म द र्मे च अ

कि दि नं ल व क्ष लि प उ निमि स र हु वि नेम द इ ह तोम

प नुअ अं प क नं ठ ति प्र ठि प म इ च त म म अ ल म निवि कु

तु व भ प स सु त हि नं त्व स र्वें स ति दे द रे व दि

खरोष्ठी लिपि-दूसरी शताब्दी- स्रोत ले.क. का इति- (P-106)

तक्षशिला के धार्मराजिका स्तूप से प्राप्त रजतपत्र पर अंकित खरोष्ठी लेख

(प्रथम शताब्दी)-स्रोत (Ak-P-222)

खरोष्ठी लिपि के जितने लेख मिले हैं, उनसे पाया जाता है कि उसमें स्वरों तथा उनकी मात्राओं में ह्रस्व-दीर्घ का भेद न था । संयुक्ताक्षर बहुत कम होते थे, जिनका रूप अस्पष्ट और भ्रमोत्पादक होता था । खरोष्ठी लिपि का प्रचार लगभग तीसरी शताब्दी तक पंजाब के आसपास था, किन्तु बाद में उसका स्थान, उन स्थानों में भी, ब्राह्मी ने ले लिया । तदनन्तर खरोष्ठी का अस्तित्व इस देश में समाप्त हो गया । खरोष्ठी के कई गुण कैथी ने अपना लिया, इसलिए विद्वानों का मत है कि कैथी का उद्भव खरोष्ठी से हुआ है ।

खरोष्ठी वर्णमाला स्रोत (AK-P-222)

खरोष्ठी व्यंजनों के साथ स्वर मात्राएं जोड़ने की व्यवस्था स्रोत (AK-P-223)

अशोक के खरोष्ठी लेखों के कुछ संयुक्ताक्षर, क्रमशः

1.	त्र	त्व	ध्र	श्रि	द्र	ध्र	ध्र	क्र	ग्रं
2.	प्र	प्रि	ब्र	ब्र	भ्ये	भ्र	म्म	म्य	ध्रु
3.	भ्र	र्व	स्व	स्ति	ह्म	ह्म	दृ		

अशोक के खरोष्ठी लेखों के कुछ संयुक्ताक्षर स्रोत (AK-P-223)

खरोष्ठी लिपि में शाहबाजगढ़ी का सप्तम शिलालेख (दाईं ओर से बाईं ओर को इसे यों पढ़ा जाता है-स्रोत (AK-P-225)

ब्राम्ही से उद्भूत परवर्ती लिपियाँ

भाषा के समान ही लिपि में भी निरन्तर कुछ न कुछ परिवर्तन, चाहे वह प्रारंभ में अत्यन्त सूक्ष्म या नगण्य ही क्यों न हो प्रतीत हों, होते ही रहते हैं, जो शताब्दियों के बाद स्पष्ट होते हैं ब्राह्मी भी एक व्यापक जन-समाज की लिपि थी, इस कारण वह भी परिवर्तनों से मुक्त नहीं रह सकी । ई0पू0 पाँचवीं शताब्दी से लेकर लगभग 350 ई0 तक के ब्राह्मी वर्णों में कोई विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता । किन्तु, उसके बाद के लेखों में ब्राह्मी वर्णों में पूर्वापेक्षया

स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होने लगता है । ओझाजी ने लिखा है कि ''हस्तलिखित लिपियों में सर्वत्र ही समय के साथ और लेखक की रुचि के अनुसार परिवर्तन हुआ करता है । ब्राम्ही में भी समय के साथ बहुत परिवर्तन हुआ और उससे कई लिपियां निकलीं जिनके अक्षर मूल अक्षरों से बिलकुल बदल गए । जिनको प्राचीन लिपियों का परिचय नहीं है, वे सहसा यह स्वीकार न करेंगे कि हमारे देश की नागरी, शारदा, गुरुमुखी, बंगला, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ी, ग्रन्थ तमिल आदि समस्त वर्तमान लिपियां एक ही मूललिपि ब्राह्मी से निकली हैं ।

चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी दो प्रमुख शैलियों में विभक्त हो गयी, जिन्हें विद्वानों ने उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली कहकर पुकारा है । उत्तरी शैली का प्रचार प्राय: विन्ध्य पर्वत के उत्तर में तथा दक्षिणी शैली का प्रचार मुख्य रूप से उसके दक्षिण में हुआ । यों कहीं-कहीं उत्तर में दक्षिणी तथा दक्षिण में उत्तरी शैली के लेख भी मिलते हैं । उत्तर भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ ब्राह्मी की उत्तरी शैली से तथा दक्षिण भारत की सभी परवर्ती लिपियाँ दक्षिणी शैली से विकसित हुई हैं । कालक्रम में इन दोनों शैलियों से विकसित होनेवाली भिन्न-भिन्न लिपियों में परस्पर इतना अन्तर हो गया है कि आज बिना सीखे, न तो उत्तर वाले दक्षिण की किसी लिपि को पढ़ सकते हैं और न दक्षिण वाले उत्तर की किसी लिपि को ।

ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित लिपियाँ

गुप्तलिपि : चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी की उत्तरी शैली से जिस नवीन लिपि का जन्म हुआ, उसका नाम 'गुप्तलिपि' रखा गया है । गुप्त लिपि (अर्थात् गुप्तकालीन लिपि) का स्वरूप प्राचीन ब्राह्मी से स्पष्टत: भिन्न है । उसमें मात्राओं के चिन्ह नए रूपों में परिवर्तित हो चुके हैं । उसके अनेक वर्णों की आकृति नागरी के वर्णों से मिलती-जुलती दृष्टिगोचर होती है । उदाहरणार्थ, अ,क,ग,च,ड,ढ,त,द,प,भ,ल तथा ष के रूपों में दोनों पर्याप्त समता है । गुप्त लिपि के वर्णों की शिरोरेखा का प्रयोग स्पष्ट रूप से मिलता है ।

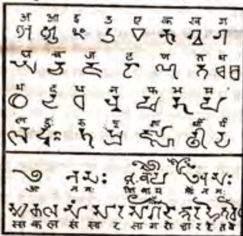
इस लिपि का प्रचार चौथी से पाँचवीं शताब्दी तक सम्पूर्ण उत्तर भारतवर्ष में था । उस समय, चूँकि भारत में गुप्तवंशी सम्राटों का राज्य था, इस कारणवश उस युग की लिपि का नामकरण भी उन्हीं के वंश के नाम के आधार पर किया गया है । इस लिपि के नमूने गुप्तवंशी राजाओं के शिलालेखों तथा दानपत्रादि में मिलते हैं । तत्कालीन धर्मप्रचारकों एवं व्यापारियों के द्वारा इस लिपि का प्रचार मध्य एशिया तक हुआ जिससे प्राचीन खोतानी, ईरानी तथा तोखारी आदि लिपियां विकसित हुईं । छठी शताब्दी में इसी की पश्चिमी उपशाखा से 'सिद्धमात्रिका' लिपि का विकास हुआ, जिसके अक्षर न्यूनकोण के आकार के थे । बूलर ने इसी कारण उसे 'न्यूनकोणीय लिपि' की संज्ञा दी है । बोधगया में प्राप्त 588-89 ई0 का प्रसिद्ध लेख इसी 'सिद्धमातृका' लिपि में है ।

ओझा जी के अनुसार गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियाँ नागरी से कुछ-कुछ मिलती हुई होने लगीं । सिरों के चिन्ह, जो पहले बहुत छोटे थे, बढ़कर कुछ लम्बे बनने लगे और स्वरों की मात्राओं के प्राचीन चिन्ह लुप्त होकर नये रूपों में परिणत हो गए हैं । डॉ0

उदयनारायण तिवारी ने संभवत: ओझाजी के इसी कथन के आधार पर भ्रम से यह समझ लिया है कि नागरी लिपि तथा शारदा लिपि का जन्म गुप्त लिपि से ही हुआ, जो वास्तव में सही नहीं है। गुप्त लिपि से कुटिल लिपि तथा 'कुटिलाक्षर' का विकास हुआ और तब उसी कुटिल लिपि से नागरी तथा शारदा लिपि विकसित हुई।

कुटिल लिपि : छठी शताब्दी तक आते-जाते गुप्तलिपि भी बहुत अधिक परिवर्तित हो गयी, इस कारण उसके परिवर्तित रूप का ही दूसरा नाम 'कुटिल लिपि' पड़ा । ओझाजी के अनुसार 'कुटिल लिपि में अक्षरों की खड़ी रेखाएं नीचे की तरफ बायीं ओर मुड़ी हुई होती हैं और स्वरों की मात्राएं अधिक टेढ़ी-मेढ़ी तथा लम्बी होती हैं, इसी से उसका नाम कुटिल लिपि पड़ा । इस लिपि के देवल गाँव से मिली हुई 992 ई0 की प्रशस्ति में 'कुटिलाक्षर' शब्द का (कुटिलक्षराणि विदुषा तक्षादित्यभिधनेन), 'विक्रमांकदेवचरित' में 'कुटिल लिपि' शब्द का (नो कायस्थै: कुटिललिपिभिर्नोविटैश्चाटुदक्षै:) तथा मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अपराजित की 661 ई0 की प्रशस्ति में 'विकटाक्षर' शब्द का (यशोभटेन पूर्णे यमुत्कीर्णा विकटाक्षरा) प्रयोग मिलता है । इससे स्पष्ट है कि इसका नाम पर्याप्त प्राचीन है । इस लिपि के नमूने यशोधर्मन, हर्ष, अंशुवर्मन, शिलादित्य, आदित्य सेन आदि अनेक राजाओं के शिलालेखों तथा दानपत्रादि में मिलते हैं । इस लिपि का प्रचार छठी शताब्दी से लगभग नवीं शताब्दी तक संपूर्ण उत्तर भारत में था ।

कुटिल लिपि-छठी से नवीं श० तक



कुटिल लिपि-छठी से नवीं शताब्दी तक
स्रोत (LKKI-P-128)

अ	[illegible]	ठ	[illegible]	य	[illegible]
अ	[illegible]	ड	[illegible]	र	[illegible]
इ	[illegible]	ड	[illegible]	ल	[illegible]
उ	[illegible]	ढ	[illegible]	व	[illegible]
ए	[illegible]	ण	[illegible]	श	[illegible]
क	[illegible]	ण	[illegible]	ष	[illegible]
ख	[illegible]	त	[illegible]	स	[illegible]
ग	[illegible]	थ	[illegible]	ह	[illegible]
घ	[illegible]	द	[illegible]	ळ	[illegible]
ङ	[illegible]	ध	[illegible]	क्ष	[illegible]
च	[illegible]	न	[illegible]	ज्ञ	[illegible]
छ	[illegible]	प	[illegible]	का	[illegible]
ज	[illegible]	फ	[illegible]	कि	[illegible]
झ	[illegible]	ब	[illegible]	की	[illegible]
ञ	[illegible]	भ	[illegible]	कु	[illegible]
ञ	[illegible]	भ	[illegible]	कू	[illegible]
ट	[illegible]	म	[illegible]	के	[illegible]

ब्राम्ही से देवनागरी के विकासानुक्रम (अ, ञ, ड और ण के दो-दो प्रकार हैं) स्रोत (AK-P-......)

इसी कुटिल लिपि से देवनागरी या नागरी तथा शारदा लिपि का विकास हुआ । शारदा से कश्मीरी, टाकरी, गुरुमुखी और लँहदा

देवनागरी अक्षरों का विकास स्रोत (LKKI-P-192)

देवनागरी का विकास स्रोत (LKKI-P-193)

देवनागरी-ग्यारहवीं श०

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	
ओ	औ	ं	:	क	ख	ग	घ	
ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	
ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व
श	ष	स	ह					

देवनागरी ग्यारहवीं श० स्रोत (LKKI-P-190)

देवनागरी-बारहवीं श०

अ	आ	इ	ई	उ	ए	ऐ	क	ख	ग	
घ	ङ	ट	ठ	ड	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	
स	ह	लै	हि	ह्म	प्रे	श्री				

तद्दंश्यो हैहय आसीच

तौ जाय न्त हैहयाः।

देवनागरी बारहवीं श० स्रोत (LKKI-P-191)

देवनागरी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
दूसरी श०	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	८.कुषाण
तीसरी श०	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	जग्गयपेट
छठी श०	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	वलभी
खरोष्ठी	I	II	III	X	IX	IIX	IIIX	XX	IXX	
शारदा	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
टाकरी	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
बंगला	১	২	৩	৪	৫	৬	৭	৮	৯	
मैथिली	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
कैथी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
उड़िया	୧	୨	୩	୪	୫	୬	୭	୮	୯	
गुजराती	૧	૨	૩	૪	૫	૬	૭	૮	૯	
तेलुगु	౧	౨	౩	౪	౫	౬	౭	౮	౯	
कन्नड़	೧	೨	೩	೪	೫	೬	೭	೮	೯	
तमिल	௧	௨	௩	௪	௫	௬	௭	௮	௯	௰ ௱ ௲
मलयालम	൧	൨	൩	൪	൫	൬	൭	൮	൯	
उर्दू	۱	۲	۳	۴	۵	۶	۷	۸	۹	
देवनागरी अंकों का विकास	=	[illegible]	२२	≡	[illegible]	[illegible]	३			

स्रोत अंक (LKKI-P-202)

वट्टेलुत्तु लिपि - ग्यारहवीं श०

आदि अनेक वर्तमान लिपियों का तथा प्राचीन नागरी से बंगला, गुजराती, कैथी, महाजनी, उड़िया, नेपाली तथा वर्तमान नागरी (देवनागरी) आदि उत्तर भारत की सभी आधुनिक लिपियों का जन्म हुआ ।

नागरी लिपि : नागरी लिपि का उद्भव आठवीं-नवीं शताब्दी के आसपास कुटिल लिपि से हुआ । उत्तर में इसका प्रचार नवीं शताब्दी के अन्त से मिलता है, किन्तु दक्षिण में इसका प्रचार आठवीं शताब्दी के आसपास से ही होना पाया जाता है । दक्षिण में राष्ट्रकूट (राठौड़) वंशी राजा दन्तिदुर्ग के सामनगढ़ से मिले हुए 754 ई0 के दानपत्र की लिपि नागरी ही है । दक्षिण में इसको नन्दि नागरी कहते हैं ।

प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से बंगला लिपि निकली । नागरी से विकसित अन्य लिपियों में कैथी, महाजनी, राजस्थानी तथा गुजराती विशेष उल्लेखनीय हैं ।

वर्तमान काल में भारतवर्ष की आर्य लिपियों में नागरी का प्रचार सबसे अधिक है । इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतवर्ष के अधिकांश प्रदेशों में इसका प्रचार रहा है । बंगाल में भी दसवीं शताब्दी तक तो यही लिपि रही, बाद में इसी के परिवर्तित रूप से वहां बंगला लिपि का विकास हुआ। पंजाब और कश्मीर में इसकी बहन शारदा का प्रचार दसवीं शताब्दी के आसपास से हुआ । नागरी से विकसित अन्य लिपियों में कैथी, तिरहुता (मिथिलाक्षर), गुजराती, महाजनी, मालवी तथा मौड़ी विशेष उल्लेखनीय हैं । दक्षिण के भिन्न-भिन्न विभागों में, जहां तेलुगु, कन्नड़ी, ग्रन्थ तथा तमिल का प्रचार था, वहां भी उन सबके साथ इसका आदर बना रहा । विजयनगर के राजाओं के दानपत्रों की नागरी लिपि 'नन्दि नागरी' कहलाती है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों के लिखने में उसका प्रचार है ।

वट्टेलुत्तु लिपि-ग्यारहवीं शताब्दी स्रोत (LKKI-P-133)

शारदा लिपि : इसका उद्भव और प्रचार भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी हिस्सों अर्थात् कश्मीर और पंजाब में आठवीं शताब्दी के आसपास हुआ था । आठवीं शताब्दी के राजा मेरु वर्मा के लेखों से पता चलता है कि उस समय तक पंजाब में कुटिल लिपि का ही प्रचार था । आगे चलकर उसी से शारदा लिपि का उद्भव हुआ । शारदा लिपि के अब तक जितने लेख मिले हैं, उनमें सर्वाधिक प्राचीन लेख सराहाँ (चम्बा राज्य) की प्रशस्ति है, जो दसवीं शताब्दी के आसपास की है । आगे चलकर शारदा लिपि से ही कश्टवारी सिरमौरी, कोछी, वर्तमान कश्मीरी, टक्करी या टाकरी, चम्बा, मण्डेआली, जौनसारी, कुल्लुई, लण्डा तथा डोगरी आदि लिपियों का विकास हुआ ।

लिप्यंतर	तिब्बती			फाग्स-पा-मंगोल	लेप्चा	लिप्यंतर	तिब्बती			फाग्स-पा-मंगोल	लेप्चा
	उ-चन्	उ-मेद	छुग-यिग्				उ-चन्	उ-मेद	छुग-यिग्		
क						च					
ख						छ					
ग						ज़					
ङ						व					
च						झ					
छ						ज़					
ज						अ					
ञ						य					
त						र					
थ						ल					
द						श					
न						स					
प						ह					
फ						अ					
ब						प					
म											

तिब्बती और इससे निर्मित लिपिया स्रोत (AK-P-320)

अु-मेद् लिपि

क	ख	ग	ङ	च	छ	ज	ञ	त	थ
द	न	प	फ	ब	म	च'	छ'	ज़'	व
ज्यँ	स	अ	य	र	ल	श	स	ह	अ

गो · कि · खु · वो · गे · ङो

अंक

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
चिक्	ञे	सुम्	शि	ङा	ड्रू	दून्	ग्ये	गू	चु

मेद लिपि स्रोत (LKKI-P-403)

अु-चेन् लिपि

क	ख	ग	ङ	च	छ	ज	ञ	त	थ
द	न	प	फ	ब	म	च	छ	ज	व
ज्यँ	स	अ	य	र	ल	श	स	ह	अ

कि · कु · गे · ङो

चेन् लिपि स्रोत (LKKI-P-404)

पस्सेपा लिपि

पस्सेपा लिपि स्रोत (LKKI-P-405)

बाल्टी लिपि

वाक्य: दाएं से बाएं पढ़ा जायेगा

बाल्टी लिपि स्रोत (LKKI-P-406)

शारदा लिपि का विकास

शारदा लिपि (1) और इससे बनी टाकरी और गुरूमुखी (3) लिपियां स्रोत (AK-P-296)

शारदा लिपि का विकास स्रोत (LKKI-P-159)

गुरमुखी लिपि

गुरुमुखी स्रोत (LKKI-P-179)

गुजराती लिपि

गुजराती लिपि स्रोत (LKKI-P-183)

लाण्डा लिपि

लाण्डा लिपि स्रोत (LKKI-P-178)

टाकरी लिपि

टाकरी लिपि स्रोत (LKKI-P-176)

बनियाकर लिपि

बनियाकर लिपि स्रोत (LKKI-P-174)

मोड़ी लिपि- सत्तरहवीं श०

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ		
ओ	औ	क	ख	घ	ग	च	छ	ज	
झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध
न	प	फ	ब	भ	म	य	र		
ल	व	श	ष	स	ह	अं			
क्ष	ज्ञ								

मोड़ी लिपि-सत्तरहवीं शताब्दी स्रोत (LKKI-P-161)

मैथिल लिपि

एक गोटा के दुई बेटा छैन

अर्थ: एक मनुष्य के दो बेटे थे।

मैथिल लिपि स्रोत (LKKI-P-162)

तिरहुतिया लिपि

अ	आ	इ	उ	ऊ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग
घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र
ल	व	श	ष	स	ह

एक अनार दुई बुआ भिरल

तिरहुतिया लिपि स्रोत (LKKI-P-163)

भोजपुरी लिपि

अ	आ	इ	उ	ऊ	ए
ऐ	ओ	औ	क	ख	ग
घ	ङ	च	छ	ज	झ
ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न	प
फ	ब	भ	म	य	र
ल	व	श	ष	स	ह

एक आदमी कोई है जिसका दो बेटा है

भोजपुरी लिपि स्रोत (LKKI-P-164)

मागधी (मगही) लिपि

मागधी (मगही) लिपि स्रोत (LKKI-P-165)

देवनागरी आशु-लिपि के कुछ चिह्न

देवनागरी आशु-लिपि के कुछ चिह्न स्रोत (LKKI-P-201)

नेत्रहीनों के लिए ब्रेल लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	
श	ष	स	ह	क्ष	त्र	ज्ञ	ड़	ढ़	
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

नेत्रहीनों के लिए ब्रेल लिपि स्रोत (LKKI-P-199)

बंगला लिपि : बंगला लिपि का विकास नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शताब्दी के आसपास हुआ। बदाल के स्तम्भ पर खुदे हुए नारायण पाल के समय के लेख में, जो दसवीं शताब्दी का है, बंगला की ओर स्पष्ट झुकाव दीखता है। उसी से नेपाल की 11वीं शताब्दी के बाद की लिपि असमिया, मनीपुरी, वर्तमान बंगला, मैथिली तथा उड़िया आदि लिपियों का विकास हुआ।

नारायण पाल के लेखों में पुरानी नागरी के केवल 'ए', 'ख' आदि कुछ अक्षरों में बंगला की ओर झुकाव नजर आता है । ग्यारहवीं शताब्दी के पालवंशी राजा विजयपाल के देवपारा के लेख में ए, ख, त,म, र, ल और स में नागरी से थोड़ी सी भिन्नता है और कामरूप के वैद्यदेव के दानपत्र, आसाम से मिले हुए बल्लभेन्द्र के दानपत्र और हस्त्राकोल के लेख की लिपियों में से प्रत्येक को नागरी से मिलाया जाय तो अ,इ,ई,ऋ,ए,ऐ,ख,घ,झ,त,थ,प,फ,र,श और ष में अन्तर पाया जाता है । इस प्रकार नागरी की लेखन-शैली में क्रमशः परिवर्तन होते-होते वर्तमान बंगला लिपि बनी ।

कैथी एक महत्वपूर्ण एवं स्वतंत्र लिपि थी इसका उपयोग लगभग संपूर्ण उत्तरी भारत में होता था जिसमें बिहार और उत्तर प्रदेश के राज्य सम्मिलित थे । इस लिपि का उपयोग मारीशस, त्रिनिदाद एवं अन्य वैसे जगहों में जहां उत्तरी भारत की मूल आबादी गयी, वहां भी होती थी। कैथी लिपि का प्रयोग भोजपुरी, मगही, उर्दू, मैथिली सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के लिखने के लिए होता था ।

कैथी लिपि में प्रिंटिंग के कार्य भी होते थे । इसका संबंध देवनागरी, गुजराती सहित उत्तरी भारत में प्रचलित कई अन्य लिपियों के साथ था ।

सिलहॉटी नागरी, महाजनी एवं अन्य समान लिपियों के लिए तो कैथी पूर्वज की तरह है । इस लिपि का आमजनों में अति लोकप्रियता के कारण इस लिपि का उपयोग उत्तर भारत में प्रचलित देवनागरी, फारसी एवं अन्य लिपियों के साथ भी हुआ ।

उत्तर भारत के तत्कालीन समाज में कैथी की उपयोगिता का अनुमान कैथी लिपि प्रयोग करनेवालों की संख्या एवं इस लिपि में तैयार हुए दस्तावेजों को देखकर किया जा सकता है । शासनिक कार्यों में कैथी का उपयोग उत्तरी भारत में 16वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक हुआ ।

संदर्भ संकेत :

1. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-3
2. डॉ0 अनन्त चौधरी, नागरी लिपि और हिन्दी वर्तनी
3. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-3
4. उपरिवत्, पृष्ठ-4
5. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय-1, पृष्ठ- 18-19
6. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-4
7. उपरिवत्, अध्याय-1, पृष्ठ-6
8. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय-1, पृष्ठ-21
9. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-9
10. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय-1, पृष्ठ-21
11. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-11
12. उपरिवत्, अध्याय-1, पृष्ठ-12
13. उपरिवत्, अध्याय -1, पृष्ठ - 13
14. डा0 अनन्त चौधरी, नागरी लिपि और वर्तनी, पृष्ठ-11

15. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय- 1
16. उपरिवत्
17. उपरिवत्
18. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-21. पृष्ठ-207
19. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय- 1
20. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-21, पृष्ठ-211
21. उपरिवत्, अध्याय-21, पृष्ठ-213
22. उपरिवत्, अध्याय-21, पृष्ठ-214
23. उपरिवत्, अध्याय-21, पृष्ठ-215
24. उपरिवत्, अध्याय-21, पृष्ठ-216
25. उपरिवत्, अध्याय-21, पृष्ठ-217
26. उपरिवत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
27. उपरिवत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
28. उपरिवत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
29. उपरिवत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
30. उपरिवत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
31. उपरिवत्, अध्याय-24, पृष्ठ-233
32. उपरिवत्, अध्याय-24, पृष्ठ-233
33. अंग लिपि के इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय-2, पृष्ठ-28
34. उपरिवत्, अध्याय-2, पृष्ठ- 28
35. उपरिवत्, अध्याय-2, पृष्ठ -29
36. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-24,पृष्ठ-233
37. उपरिवत्, अध्याय-24, पृष्ठ - 234-235
38. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', पृष्ठ-30
39. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-25, पृष्ठ-237
40. उपरिवत्, अध्याय-25, पृष्ठ - 237
41. उपरिवत्, अध्याय-25, पृष्ठ -241,
42. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', अध्याय-2, पृष्ठ-31
43. उपरिवत्, अध्याय-2
44. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-26, पृष्ठ -248
45. उपरिवत्, अध्याय-26, पृष्ठ - 250
46. उपरिवत्, अध्याय-26, पृष्ठ - 256
47. उपरिवत्, अध्याय-26, पृष्ठ - 256
48. उपरिवत्
49. उपरिवत्, अध्याय -27, पृष्ठ - 260
50. उपरिवत्
51. उपरिवत्
52. उपरिवत्, अध्याय-27, पृष्ठ - 262
53. उपरिवत्, अध्याय-27, पृष्ठ - 263
54. उपरिवत्, अध्याय -27,पृष्ठ - 263

कैथी लिपि का इतिहास

कायस्थों की लिपि - कैथी

विद्वान लेखक अशोक कुमार वर्मा ने अपनी किताब 'कायस्थों की सामाजिक पृष्ठभूमि में लिखा है कि कायस्थों के आदिपुरुष भगवान चित्रगुप्त ही आदि लेखक हुए । उन्होंने ही वेदों को 'श्रुति-स्मृति' के स्वरूप और परम्परा से मुक्त कर लेखनीबद्ध किया । इसलिए उन्हें वेद-अक्षर दाता कहा गया है । भगवान चित्रगुप्त के वंशज कायस्थ जाति के लोग लेखकीय पेशा से सम्बद्ध रहे हैं। यद्यपि पूर्व में लेखन कला को कई कारणों से आपत्तिजनक माना जाता था, फिर भी 'कायस्थों' ने इस परम्परा की परिधि से निकलकर एक लिपि का आविष्कार किया । वह लिपि थी 'कैथी लिपि' जो प्राचीनतम लिपियों में से है । हो सकता है यह लिपि भगवान चित्रगुप्त द्वारा आविष्कृत हो, जिसे वंश-परम्परा या शिष्य परम्परा में कायस्थों ने अपना लिया । जो भी हो, परन्तु लिपि का आविष्कार कर कायस्थों ने समाज की अहम आवश्यकता की पूर्ति कर अपना और समाज का बहुत बड़ा हित किया।[1]

कैथी लिपि की प्राचीनता और व्यापकता के संबंध में कोशी अंचल के एक जाने-माने विद्वान श्री हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ' ने अपनी पुस्तक 'अंगिका लिपि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में विस्तृत रूप से चर्चा की है ।[2]

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' में लिखा है - "कैथी लिपि उसी लिपि का नाम है, जो उत्तर भारत में 'कैथ' या कायस्थ नामक एक लिपिक जाति में प्रचलित है । यद्यपि कहीं-कहीं अल्प प्रचलित अक्षरों के अभाव के कारण यह लिपि परिपूर्ण नहीं है, तथापि इस लिपि के तथा देवनागरी लिपि के बीच यही सम्बन्ध है जो लिखित अंग्रेजी और मुद्रित अंग्रेजी के बीच है । गुजरात के तटवर्ती इलाके से लेकर कोशी तट तक

संपूर्ण उत्तरी भारत में साधारणत: कैथी लिपि का प्रचलन है । इतने विशाल परिक्षेत्र में स्वभावत: इसके अनेक रूपान्तर हो गए हैं । ये रूपान्तर कुछ स्थानीयता के कारण तथा कुछ व्यक्तिगत लेखन-शैली के कारण हुए हैं । बिहार में निम्न जाति के लोगों को शिक्षित करने में इस लिपि का भरपूर उपयोग होता है क्योंकि देवनागरी लिपि का ज्ञान उनके लिए आडम्बर समझा जाता है । गुजरात में इस लिपि को जातीय लिपि का गौरव प्रदान किया गया है । वहाँ हाल ही में इस लिपि का मुद्रण आरंभ किया गया था जो वर्तमान पीढ़ी के लोगों को स्मरण है । गुजराती भाषा में सबसे पहले जो ग्रन्थ छपा था वह मुद्रणालय में देवनागरी टाइप में मुद्रित हुआ था । इसमें संयुक्ताक्षर बहुत कम होता है । जो संयुक्ताक्षर का टाइप मिलता है, वह स्वत: पहचान में आ जाता है । बिहारी भाषा में जो कैथी लिपि प्रचलित है, उसमें कुछ-कुछ स्थानीय रूप भेद हैं एवं तदुसार इसके तीन प्रभेद परिलक्षित होते हैं – मिथिला की कैथी, मगध की कैथी तथा भोजपुरी लिखने की कैथी ।[3]

शंकरानन्द स्वामी ने 'दि इन्डस पीपुल स्पीकर्स' में प्राचीन सिन्धु-सभ्यता की एक तन्त्र पट्टिका या मुहर के शब्दों को तान्त्रिक आधार पर 'कथ' पढ़ा है ।[4]

'कैथ' उपनिषद् काल की एक कृषि-जीवी और मसीजीवी जाति थी । संभवत: कायस्थ जाति से यह तन्त्र पट्टिका या मुहर सम्बन्धित है ।[5]

सिन्धुघाटी की चित्रलिपि को पढ़ने-समझने के क्रम में भागलपुर के जिला परिवहन पदाधिकारी स्वर्गीय निर्मल कुमार वर्मा ने संथालों के गुरु की सहायता से जो वर्णमाला तैयार की है उसमें संथाली भाषा में 'क' और 'थ' की आकृति वही है, जिसे शंकरानन्द स्वामी ने 'कथ' पढ़ा है।[6]

भाषाविद् श्री राजेश्वर झा के अनुसार कैथी लिपि इसी 'कथ' जाति से संबंधित है, जो समस्त उत्तर भारत की जनलिपि के रूप में अद्यावधि प्रचलित है ।[7] पुरा काल में इस जाति की सक्सेना शाखा गान्धार से काठियावाड़ तक फैली थी । वर्तमान कैथी लिपि के स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में अँगिका साहित्य के विद्वान डा0 तेजनारायण कुशवाहा की पुस्तक "अँगिका भाषा का इतिहास" के अनुसार, "कैथी लेखन में शिरोरेखा नहीं होती और न ही संयुक्त वर्ण उसमें होते हैं । यह कायस्थों में विशेष लोकप्रिय रही क्योंकि लेखन-कार्य साधारणत: वे ही किया करते थे । इसलिए कैथी का नामांतर रूप कायस्थी भी प्रचलित हुआ । 'कायस्थी' कायस्थों की लिपि के अर्थ में व्यवहृत हुई है । कैथी के संयुक्ताक्षर-विहीन-प्रवृत्ति होने के कारण शब्द कायस्थी-कायथी-कैथी में विकसित हुआ । अँगिका, भोजपुर, तिरहुत और मगध की लिपि कैथी अभी हाल के वर्षों तक समस्त उत्तर भारत की राष्ट्रीय लिपि थी ।"8

बंगाल के भाषाविद् डा0 सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ दी बेंगाली लैंग्विज (पृष्ठ 224-225) और डॉ0 जयकान्त मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर (पृष्ठ-67-68) में पूर्वांचलीय वर्णमालाओं यथा बंगला, असमिया, मैथिली और उड़िया लिपि के संबंध में विस्तार से वर्णन किया है । उन्होंने लिखा है कि यह पूर्वांचलीय वर्णमाला गुप्तकालीन (400-500ई0) वर्णमाला का एक भेद है जो

कुषाणकालीन लिपि के घसीटकर या शीघ्रतापूर्वक लिखने के कारण विकसित हुई । यह प्राचीन काल की ब्राह्मी लिपि का विकास-कम था जो आधुनिक काल में समस्त भारतीय वर्णमालाओं की जननी मानी जाती है । यह घसीटकर शीघ्रतापूर्वक लिखी जाने वाली शैली पूर्वांचलीय वर्णमालाओं के हस्तलेखों में सातवीं शताब्दी ई0 से मिलने लगती है । इस तरह का हस्तलेख जापान के होराउजी मंदिर में सुरक्षित है । यह घसीटकर शीघ्रतापूर्वक लिखी जानेवाली लिपि पूर्वीय वर्णमाला प्रत्यक्षत: बंगला, असमिया, मैथिली और उड़िया लिपि का उद्‌गम स्त्रोत है । व्यवहारिक रूप से वे सभी एक दूसरे के समान हैं । मगध में वही वर्णमाला मुस्लिम काल के पूर्व के हस्तलेखों में मिली है जो मगध के नालन्दा और विक्रमशिला में लिखी गयी थी और नेपाल में पायी गयी है । किन्तु बाद में घसीटकर शीघ्रतापूर्वक लिखी जानेवाली यह लिपि शिरोरेखा विहीन आशुलिपिवत् है जो भारतीय वर्णमालाओं की देवनागरी शैली से मिलती है । उत्तरी और पूर्वी भारत में सातवीं शताब्दी से कैथी के नाम से प्रचलित है जो भोजपुरिया क्षेत्र होकर मगध में आई और आज तक प्रचलित है । भाषाविद श्री राजेश्वर झा का मानना है कि मागधी लिपि ही कैथी लिपि है।

कैथी लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	औ	
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ञ	
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	
श	ष	स	ह						

कैथी-लिपि स्रोत (LKKI-P-166)

दरअसल प्राचीन काल में मगध जनपद भारत के तत्कालीन सोलह महाजन पदों में से एक था । बौद्ध ग्रंथ 'ललित विस्तर' (पृष्ठ- 125-126) के अनुसार 'मगध' की एक विशिष्ट लिपि थी । भाषा वैज्ञानिकों ने सभी कोणों से परीक्षण के बाद पाया है कि वह लिपि मागधी लिपि थी, जो बाद में कैथी लिपि नाम से विख्यात हुई । इस प्रकार कैथी लिपि का उद्भव मगध प्रदेश में माना जाता है जो आधुनिक काल में बिहार का पटना जनपद कहलाता है। 'ललित विस्तर' में जिन 64 लिपियों का वर्णन है उसमें मगध लिपि छठे स्थान पर है । मगध लिपि मूलत: कैथी लिपि है । इस प्रकार कैथी एक प्राचीन लिपि है ।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान में 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी की कैथी में लिखित सैकड़ों पोथियां और बही-खाते मिले हैं, जिन्हें देखने से पता चलता है कि कैथी का प्रसार देवनागरी से भी अधिक था । उन पोथियों के गहन अध्ययन के आधार पर डॉ0 शिवशंकर प्रसाद वर्मा ने कहा है, "स्पष्टत: इस विस्तृत भूभाग की जनता के आम व्यवहार की और साहित्यिक, धार्मिक रचनाओं की लिपि मुख्यत: कैथी थी । इसके बाद देवनागरी का स्थान आता है ।"

कैथी एक प्राचीन लिपि है । यह सिन्धु-सभ्यता काल में भी चित्रात्मक स्वरूप में थी ।

लिपि-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान बार्टन के अनुसार सभी प्राचीन लिपियों का जन्म ही चित्राक्षर से हुआ है-। भाषाविद श्री राजेश्वर झा के अनुसार अति आरंभ काल से कैथी उत्तर भारत की जनलिपि के रूप में व्यवहृत होती आई है जबकि पठन-पाठन के लिए ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होता था जो सिन्धु लिपि का विकसित रूप था।

अंग जनपद की भाषा अंगिका कैथी लिपि में ही लिखी जाती थी। 18वीं शताब्दी में रचित ''विषहरी लोकगाथा काव्य'' भागलपुर के चम्पानगर के विषहरी मन्दिर में कैथी में ही सुरक्षित है।[10]

'भारत का भाषा सर्वेक्षण' में डा0 ग्रियर्सन कहते हैं, ''मैथिली भाषी क्षेत्र में कम से कम तीन प्रकार की लिपियां प्रचलित हैं। मिथिला की वास्तविक लिपि मिथिलाक्षर है और इसका व्यवहार मैथिल ब्राह्मण एवं कायस्थ लोग करते हैं। यह बंगला से बहुत मिलती-जुलती है। इस लिपि का प्रयोग अन्य जाति के लोग नहीं करते। मैथिली लिखने की वह लिपि, जिसका प्रयोग अन्य सभी जाति के लोग करते हैं और जो सामान्यत: सम्पूर्ण उत्तरी भारत अर्थात् बिहार से गुजरात तक के स्थानीय प्रभाव से थोड़ा बहुत परिवर्तन सहित व्यवहार होती है, वह है कैथी। कैथी की वर्णमाला अपूर्ण है। इसमें 'इ' और 'ई' दोनों के स्थान पर 'ई' लिखा जाता है। उसी प्रकार 'उ' एवं 'ऊ' नहीं लिखकर केवल 'उ' लिखा जाता है।''[11]

गुप्त काल के राज्य प्रशासन में सशक्त स्तम्भ के रूप में लेखक वर्ग की पहचान थी। ये बुद्धिमान एवं कुशल लेखक राज्य के शासकीय अभिलेखों के संधारण में पटु एवं प्रवीण माने जाते थे। इनकी लिपि थी कैथी। उन तत्कालीन मसिजीवियों की अनमोल सम्पत्ति थी उनकी अपनी लिपि, जो तत्कालीन समाज के सामान्य लोगों के लिए बोधगम्य और सर्वमान्य थी। परन्तु अभिजात्य वर्ग के लोग इसे 'कुटिलाक्षर' कहते थे। यद्यपि सामान्य जन इसे कैथी लिपि ही कहते और समझते रहे। लगभग 12वीं शताब्दी तक कैथी ही कुटिलाक्षर नाम की लिपि से चलती रही।[12]

फ्लीट महोदय के अनुसार सातवीं शताब्दी के आसपास मागधी (कैथी) के समानान्तर कुटिल लिपि का विकास हुआ। सातवीं से 12वीं शताब्दी के कुटिल लिपि के कई अभिलेख मौजूद बताए गए हैं जिनमें आदित्य सेन के शाहपुर प्रस्तर अभिलेख, मन्दार पर्वत के शिलाभिलेख, देव वर्मन के अभिलेख आदि हैं। (कारपस इन्स्क्रीप्शन इण्डिकेरम, भाग-3 पृष्ठ-208) इस प्रकार कैथी लिपि के उद्‌भव और विकास के संदर्भ में कुटिलाक्षर का महत्व बताया जाता है।[13] गुणाकर मूले ने 'अक्षर बोलते हैं' में लिखा है कि ''छठी शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक की अवधि के लेखों के अक्षर टेढ़े-मेढ़े हैं, इसलिए उन्हें 'कुटिलाक्षर' भी कहा जाता है। इस लिपि की वर्णमाला की शुरुआत 'ऊँ नम: सिद्धम्' से की जाती है। इसलिए इसे 'सिद्धम्' या 'सिद्धमातृका' लिपि का भी नाम दिया गया है।[14]

श्री राजेश्वर झा ने मिथिला भारती (मार्च-जून 1969, पृष्ठ 62) पर लिखा है कि 'कैथी सुदूरपूर्व में कामरूप (असम) तक फैली थी। बल्कि यों कहें कि असम की वर्तमान भाषा के उद्‌भव और विकास में कैथी का ही महत्वपूर्ण स्थान है तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी। स्वयं ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में कामरूप की भाषा और लिपि तथा मगध की भाषा और लिपि (कैथी) में अत्यन्त अल्प भिन्नता देखी थी।[15]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि असम में इसी कैथी लिपि ने वहां की असमी लिपि को विकसित किया तथा असमी परिवेश को स्वयं भी ग्रहण किया । असम की कैथी लिपि वहां के बरूआ और भूयान उपाधिधारी कायस्थों के यहां पुराने अभिलेख अथवा जन्म कुण्डली में अभी भी देखने को मिलती है। इस कैथी लिपि में असमी लिपि की हल्की छाया है, किन्तु यह अपनी मौलिक पहचान से पूर्णत: सम्पूरित है । वर्तमान कैथी की पहचान है इसका शिरोरेखाविहीन होना ।

चौदहवीं शताब्दी में असम के जन कवि वैष्णव धर्म के अनुयायी श्रीमंत शंकर देव ने वैष्णव धर्म के प्रचारार्थ जिस भाषा और लिपि का प्रयोग किया था वह थी वैष्णव संस्कृति की तत्कालीन प्रतिनिधि जनभाषा ब्रजबुलि भाषा और मैथिली का मिश्रित रूप ।[16] शंकरदेव भूयान कायस्थ जाति के थे । तत्कालीन जिस जनलिपि में उन्होंने भजन, कीर्तन और नाटकों की रचना की थी, वह लिपि थी कैथी ।[17]

जिन 84 सिद्धों का नामोल्लेख राहुल सांकृत्यायन ने किया है, उनमें अंग-मगध के अनेकानेक सिद्ध हैं जिन्होंने कैथी लिपि, भाषा एवं संस्कृति के समुत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । संपूर्ण सिद्ध साहित्य की लिपि कैथी ही है । कायस्थ जाति के सिद्ध लुइपा पालशासक धर्मपाल के 'लेखक' थे । डा0 रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में सिद्ध लुइपा को प्रथम और सिद्ध कण्हपा को 17वें सिद्ध के रूप में माना है। ये दोनों कायस्थ थे और तत्कालीन शासन के लेखक थे। पाल शासकों के सारे राजस्व अभिलेख कैथी में ही लिखे जाते थे । नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों से शिक्षा पाकर उन सिद्धों ने अनेक ग्रन्थ लिखे । सिद्ध शबरपा की छह पुरानी कविता, पुस्तक तथा सिद्ध कर्णरीपा के छब्बीस तन्त्र शास्त्र के ग्रन्थ मगध की अनमोल धरोहरें हैं।

मगध के सिद्ध अपने साथ महायानी यंत्र को लेकर तिब्बत गए थे और वहां से मंत्रयान को लेकर आए। इस महायानी मंत्र की लिपि कैथी थी । आज भी जो सिद्ध नेपाल के प्राचीन क्षेत्र के निवासी, नेपाल के वर्तमान उदयपुर जिला तक निवास करते हैं, वे तंत्र-मंत्र के लिए अथवा अपने व्यवहारिक जीवन के लिए कैथी का ही प्रयोग करते हैं । अत: यह सिद्ध हो चुका है कि मगध के सिद्धों की लिपि कैथी थी तथा तन्त्र पट्टिका (तावीज) की लिपि ब्राह्मी थी । नेपाल के सिद्ध मठों में भी यह देखा जा सकता है ।

मिथिला में कर्नाटवंशीय राज्य के संस्थापक थे नान्यदेव जिनके महामंत्री रत्नदेव थे । उनके संबंध में महत्वपूर्ण अभिलेख दरबार लाइब्रेरी, काठमाण्डो में सुरक्षित हैं । ये अभिलेख प्राचीन घसीटी कैथी में लिखे गए हैं । रत्नदेव कायस्थ वंशोद्भव थे । दसवीं सदी के पूर्व कैथी का प्राचीन रूप वर्तुलावस्था में थी । वह शिरोरेखाविहीन थी तथा घसीटकर लिखी जाती थी ।

सोलहवीं शताब्दी में काशीराज के महामंत्री लक्ष्मीधर लिखित 'कल्पतरू' नामक ग्रंथ का

उल्लेख "एपीग्राफिका इंडिका" भाग-4, पृष्ठ संख्या-195 में आया है । यह ग्रन्थ कैथी लिपि में है । लक्ष्मीधर कायस्थ थे, परन्तु अपने को द्विजोत्तम मानते थे । उस ग्रन्थ में उन्होंने अपने संबंध में लिखा है -

"यस्मिन विभ्रति विश्वपालन महायज्ञं द्विजोत्तमे!!"

लक्ष्मीधर के पिता थे हृदयधर जो काशी राज्य में अधिकारी थे । एपीग्राफिक इंडिका के उसी पृष्ठ में अंकित है कि उन्होंने अपने को कायस्थवंशी कहा है । जिस ताम्रपत्र पर लक्ष्मीधर का उपर्युक्त परिचय है, वह कैथी लिपि में है, पर उसकी भाषा संस्कृत है ।[18]

इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी की संस्कृत पोथियों का सूचीपत्र पुस्तक संख्या - 1080 (भाग-2, पृष्ठ-526) से स्पष्ट है कि बादशाह अकबर के काल में गोकरण नामक गांव की एक पाठशाला में राघवदास नामक शिक्षक कायस्थ थे । उन्होंने संवत् 1616 ई0 में 'समरलोक' नामक पुस्तक लिखी थी जिसकी लिपि कैथी थी ।

डा0 ग्रियर्सन के समय संपूर्ण मिथिला क्षेत्र के ब्राह्मण मिथिलाक्षर (तिरहुता) तथा ब्राह्णेत्तर जाति के लोग कैथी लिपि का प्रयोग करते थे । वर्तमान युग में जमींदारी उन्मूलन तक जमींदारों के अभिलेखों में कैथी लिपि का ही प्रयोग किया जाता रहा है ।

डा0 ग्रियर्सन की दृष्टि में कैथी एक स्वतंत्र लिपि है । वह कैथी को बिहारी भाषा की लिपि मानते हैं। उन्होंने कैथी को सुघड़ और सुन्दर रूप देने के विचार से एक पुस्तक लिखी "ए हैण्डबुक ऑफ कैथी कैरेक्टर" । वे लिखते हैं कि संपूर्ण बिहारी भाषी क्षेत्र में कैथी प्रचलित है । अत्यधिक पूर्ण एवं सुन्दर नागरी लिपि के साथ-साथ यह भी संपूर्ण भारत में प्रयुक्त होती रही है । उन्होंने कैथी का विशेष अध्ययन और अनुसंधान किया था । वे बिहार में कैथी का अपेक्षित प्रयोग चाहते थे । बिहार के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर एंशले एडन भी कचहरियों में फारसी लिपि के स्थान पर कैथी या नागरी लिपि के प्रचलन के पक्षधर थे । उन्होंने डा0 ग्रियर्सन को संयुक्त-मजिस्ट्रेट तथा डिप्टी कलेक्टर बनाकर कैथी अक्षरों को टाइप में ढलवाने का काम सौंपा । डा0 ग्रियर्सन ने उस पद पर कार्यभार ग्रहण कर कैथी अक्षरों को ढलवाया जिसकी रिपोर्ट कलकत्ता गजट में प्रकाशित हुई थी ।

वस्तुत: पुराकाल से ही यह देखा जा रहा है कि प्रचलित मुख्य लिपि जो अभिजात्य वर्ग के लोगों द्वारा लेखन एवं पठन-पाठन के लिए प्रयुक्त होती रही है, उसी के समानान्तर सामान्य जनों के लिए भी कोई जनलिपि मुख्य लिपि की उपलिपि के रूप में उसी लिपि से विकसित होती आई है । यह एक सामान्य प्रक्रिया है। कैथी लिपि का विकासक्रम ऐसा ही है । यह बहुलांश में सामान्य जनों की लिपि रही है। वर्तमान उत्तर भारत की मुख्य लिपि देवनागरी लिपि है । अत: कैथी लिपि देवनागरी लिपि के समानान्तर ही विकसित हुई है ।

आधुनिक काल में मैथिली एक समुन्नत भाषा है जिसकी अपनी लिपि है तिरहुता और जिसका परिवर्तित नाम मिथिलाक्षर है । चूंकि यह मिथिला की वास्तविक लिपि है, इसलिए

इसका प्रयोग कुलीन ब्राह्मण ही करते हैं, अन्य जाति के लोग नहीं । अत: मैथिली लिखने की वह लिपि जिसका प्रयोग सब जाति के लोग करते हैं एवं सामान्यत: जो संपूर्ण उत्तर भारत में अर्थात् बिहार से गुजरात तक स्थान विशेष के प्रभाव के कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ व्यवहृत होती आई है, वह है कैथी लिपि ।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ
ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
प फ ब भ म य र ल
व श ष स ह क्ष ओम्

जापान के होर्युजी बौद्ध मंदिर में रखी हुई ताड़पत्र पर लिखित 'उष्णीशविजयधारणी' नामक भारतीय हस्तलिपि (छठी शताब्दी) के अंत में दी हुई वर्णमाला । स्रोत (AK-P-286)

निष्कर्षत: कैथी लिपि भारत की प्राचीनतम लिपियों में से है । यह मूलत: एक जाति विशेष कायस्थों की लिपि है । जिसका उद्‌गम क्षेत्र मगध रहा है परन्तु उसकी व्यापकता सार्वदेशिक रही है ।चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य के प्रभाव के कारण ब्राह्मी लिपि गुप्त लिपि भी कहलाने लगी थी। यही गुप्त लिपि शीघ्रता से लिखने के कारण एक विशेष आकृति प्राप्त कर बिहार, उड़ीसा, बंगाल और असम जैसे पूर्वांचल प्रदेशों में प्रचलित हुई । पूर्वांचल की इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक लिखी जानेवाली सातवीं शताब्दी की लिपि का प्राचीन उदाहरण एक पाण्डुलिपि के रूप में जापान के होरजी मन्दिर में पाया गया है जिसकी पहचान पूर्वांचलीय मागधी लिपि के रूप में हुई है ।" यदि इसे कैथी का प्राचीन रूप मान लिया जाए तो कोई विसंगति नहीं होगी।

नयपाल के गया अभिलेख को फ्लीट महोदय ने सिद्‌धमातृका लिपि कहा है । वारुणी के अनुसार सिद्‌धमातृका लिपि कश्मीर और बनारस में प्रचलित थी । (इंडिका भाग 1, पृष्ठ 1-3) इन दोनों स्थानों की उक्त लिपि में मोटी शिरोरेखा थी किन्तु नयपाल के गया अभिलेख में शिरोरेखा नहीं है । अक्षरों के रक्षार्थ उसके शिरों पर एक पतली खूंटी या कील लगा दी गयी है । इस पतली खूंटी या कील ने कालक्रम में टिकमार्क का रूप ले लिया जो लेखकों अर्थात् कायस्थों की लिखावट में एक परंपरा बन गई । ए0एल0वासम ने 'द वंडर दैट वाज इंडिया' पृष्ठ 396 में लिखा है कि वर्णमाला के अक्षरों के माथे पर कायस्थ अपनी परंपरा का अनुसरण करते हुए छोटा टिक लगाते थे । उक्त पुस्तक के पृष्ठ 116 पर कायस्थों को कास्ट ऑफ स्काइब्स कहा है । इसी प्रकार गुणाकर मूले ने 'भारतीय लिपियों की कहानी' पृष्ठ- 58 में लिखा है कि कुषाणकालीन लेखों में पहली बार हम अक्षरों के सिरों पर छोटी घुंडियां देखते हैं । लेखक का तात्पर्य यह है कि कैथी लिपि में घुंडी देने की परम्परा या शिरोरेखाविहीन लिखने की परंपरा कुषाणकालीन लेखों से ही आरंभ होता है जो हाल के

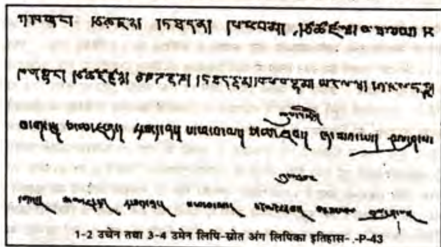
वर्षों तक रहा है ।

श्री राजेश्वर झा ने 'मिथिलाक्षरक उद्भव ओ विकास'' नामक मैथिली भाषा की पुस्तक में कहा है कि ''मगध व्रात्यों का केन्द्रस्थल था । व्रात्य लड़ाकू आदिवासियों का एक प्रबल घुमक्कड़ दल था । वे ब्राह्मणों के अनुशासन में नहीं रहकर वर्णाश्रम के आधार पर व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, व्रात्य वैश्य और व्रात्य शूद्र में विभाजित थे । सभ्यता के अत्यंत आरंभ से ही मगध की राजनीति एवं धर्म दोनों में व्रात्यों की प्रधानता थी । समस्त उत्तर भारत व्रात्यों के साहित्य, भाषा, लिपि एवं गणतंत्रात्मक सिद्धातों से अत्यंत प्रभावित था । वस्तुत: व्रात्यों के लोकोत्तर व्यापक सिद्धान्त, साहित्य, भाषा और लिपि सामान्यत: ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत उपेक्षित होते रहे । फिर भी वे समग्र मगध एवं पूर्वीय प्रदेशों के मध्य प्रसारित हुए जिसका स्पष्ट प्रभाव तत्कालीन एवं परवर्ती संस्कृत साहित्य पर पाया जाता है ।'' (पृष्ठ-6) आगे श्री झा कहते हैं :

''व्रात्यों की भाषा को 'वाटुला' और उनकी लिपि को 'वर्तुला' लिपि कहा जाता था । वर्तुला का अर्थ वृत्त-उलच एवं गोलाकार पदार्थ है । तिब्बत के पर्यटकों को बिहार आने के पूर्व 'वर्तुल' या 'वैवर्त' लिपि का अध्ययन आवश्यक होता था । उसी आधार पर तिब्बतियों ने अपनी लिपि का निर्माण किया । डा0 एस.सी.दास और डा0 डी.सी.टर्नर ने तिब्बत के दिन प्रतिदिन के व्यवहार की उमेन लिपि का नमूना प्रस्तुत किया है जो कैथी लिपि से हूबहू मिलती है।[20]

उसी पुस्तक में दूसरी जगह श्री झा का कहना है :

''तिब्बत की उमेन लिपि, जो वहां की जनलिपि के रूप में प्रचलित है, को क्यु-ई-यीमे या वर्तुल लिपि भी कहा जाता है । वर्तुल एवं कैथी एक ही प्रतीत होती है, जो अत्यंत आरंभ से ही बिहार प्रान्त में जनलिपि के रूप में प्रयुक्त होती थी तथा पठन-पाठन के लिए ब्राह्मी का प्रयोग होता था जो सिन्धु लिपि का परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप है ।''[21]


1-2 उचेन तथा 3-4 उमेन लिपि-स्रोत अंग लिपिका इतिहास- -P-43

''डा0 अल्तेकर ने 'वर्तुल लिपि' को बिहार में प्रचलित मैथिली और बंगला का पूर्ववर्ती रूप

माना है। स्वयं श्री राजेश्वर झा ने भी इसी 'वर्तुल लिपि' को आधुनिक मिथिलाक्षर का पूर्ववर्ती रूप माना है ।[22]

''चूंकि मगध के निवासी व्रात्यों की लिपि 'वर्तुल' थी इसलिए उसे मगध लिपि भी कहा जाता था । मगध लिपि से कैथी लिपि का ही तात्पर्य समझना चाहिए ।''[23]

डा० उमेश मिश्र तिरहुता अथवा मिथिलाक्षर की उत्पत्ति प्राचीन मागधी से मानते हैं।[24] जबकि भाषाविद् श्री राजेश्वर झा का मानना है कि मागधी लिपि ही कैथी लिपि है।[25]

डा० श्री दुर्गानाथ झा श्रीश ने 'मैथिली साहित्यक इतिहास' में लिखा है कि शुद्ध तिरहुता या मिथिलाक्षर का उदाहरण कर्णाटवंशी शासक नान्य देव (1097 ई०) के मंत्री श्रीधर दास के अन्धराठाढ़ी शिलालेख में मिलता है । ध्यातव्य है कि तथाकथित मिथिलाक्षर, जो वस्तुत: कैथी लिपि का परिष्कृत रूप है, का सर्वप्रथम उदाहरण एक कायस्थ श्रीधरदास के ही शिलालेख में मिलता है ।

मैथिली साहित्य का आदिकाल में श्री राजेश्वर झा ने लिखा है कि ''ह्वेनसांग ने 7वीं शताब्दी में कामरूप (असम) की भाषा एवं मगध की भाषा में अल्पभिन्नता पाई थी । उसी तरह मैथिली एवं बंगला भाषा एवं लिपि एक ही स्त्रोत मागधी से उत्पन्न हुई तथा दोनों का ही एक ही संस्कृति में लालन-पालन हुआ । मैथिली और उड़िया दोनों ही एक स्त्रोत मागधी से निःसृत हुई । इस कारण उनकी भाषा एवं लिपि दोनों में साम्यता पाई जाती है । पूर्वांचलीय प्रदेशों की भाषा और लिपियों का उद्‌गम स्त्रोत एक ही है, वह है कैथी ।''[26]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में पूर्वांचलीय प्रदेशों की एक ही लिपि थी - कैथी, बंगला, असमी, उड़िया एवं मैथिली लिपियां कैथी लिपि से ही उद्‌भूत हुई हैं। कालान्तर में इसी कैथी के परिवर्तित और परिष्कृत रूप में देवनागरी का विकास हुआ ।

मैथिली भाषा की लिपि, मिथिलाक्षर मूलतः कैथी है जो समस्त उत्तर भारत, पूर्वी भारत तथा अन्य स्थानों पर प्रचलित थी । इस लिपि के उन्नयन, संरक्षण और संवर्द्धन का सम्पूर्ण श्रेय कायस्थों को है । कैथी अर्थात् कायस्थों की लिपि ।

विद्वान ब्राह्मणों द्वारा आदिकाल से लेखन किया को अपवित्र और आपत्तिजनक नवाचार (Objectionable innovation) माना जाता था । वे वेदज्ञ ब्राह्मण वेदों पर अपना एकाधिकार बनाए रखने के लिए वेदों की तत्कालीन श्रुति-स्मृति परम्परा को अक्षुण्ण रखना चाहते थे । इसलिए उनके द्वारा लिखने के लिए किसी लिपि को संरक्षण या प्रश्रय प्रदान करने का कोई प्रश्न नहीं उठता । इसके विपरीत समस्त पूर्वांचलीय प्रदेशों की लिपियों की जननी कैथी लिपि को कायस्थों के द्वारा पूर्ण सम्मान प्रदान किया गया, उसे समुचित आसन दिया गया । क्योंकि लिखना कायस्थों का मुख्य पेशा रहा है, उनकी आजीविका का प्रमुख साधन रहा है ।

यही कारण था कि भारत के प्रमुख राजाओं-शासकों के दरबार में कायस्थों को ही लिपिकार, लेखक, कर्णिक के पद पर नियुक्त किया जाता था । गहड़वाल राजा गोविन्द्र चन्द्र का लेखक जल्हण कायस्थ था, मगध के सम्राट आदित्य सेन (672 ई0) का लेखक सूक्ष्माशिवा कायस्थ था, चाहमान राजाओं के बादाल पुरालेख (1141 ई0) का लेखक ठाकुर पैशाद कायस्थ था। देवल प्रशस्ति (952 ई0) का लेखक तक्षादित्य कायस्थ था । दिल्ली के शिवालिक स्तम्भ

(1173 ई0) का लेखक श्रीमति कायस्थ था। कलाचुरी राजा प्रतापमल के पेंदराबंध पत्रलेख का प्रशस्ति लेखक प्रतिराज कायस्थ था, सम्राट हर्षवर्धन (628 ई0) का लेखक ईश्वर नामक कायस्थ था। यशोधर्मन का लेखक था गोविन्द नामक कायस्थ। मिथिला के कर्नाटवंशी राजाओं के दो लेखक नरदत्त और हरदत्त नामक कायस्थ थे। कर्नाटवंशी राजा नान्यदेव के अन्धराठाढ़ी शिलालेख को श्रीधर दास नामक कायस्थ ने लिखा था।[27]

कैथी में शिलालेख : अनेक लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि कैथी प्राचीन लिपि है। परन्तु कैथी लिपि में शिलालेख या प्रस्तर अभिलेख आदि की चर्चा बहुत कम स्थानों पर मिली है। विद्वानों का मत है कि कैथी प्राचीन समय में भी जन की लिपि रही थी और 1000 वर्ष पहले ही यह राजकीय लिपि या शासकीय लिपि के रूप में अंगीकार की गयी थी। शिलालेख आदि कार्य शासक द्वारा कराए जाते थे और इस कारण इसमें कैथी लिपि का होना अधिक सुसंगत नहीं लगता।

कैथी लिपि में शिलालेख एवं पुरालेख बहुत कम मात्रा में मिले हैं। वर्ष 2001 में भारत कला भवन, बनारस द्वारा प्रकाशित लेख में चर्चा की गयी है कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भारत कला भवन स्थित पुरातात्विक गैलरी में तांबा के प्लेट पर संस्कृत के कुछ वाक्य लिखे हुए हैं जो कैथी लिपि में है। ये वाक्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कान्यकुब्ज के गहदलवा राजवंश के राजा बाज बहादुर चन्द्रदेव (1090 ई.) द्वारा दान में दी गयी भूमि के संबंध में है। यदि ये वाक्य निश्चित रूप से कैथी में ही लिखे गए हैं तो कैथी में उत्कीर्णित शायद सबसे पुराना अभिलेख यही होगा।[28]

आज की हिन्दी जिसकी लिपि देवनागरी है, कायस्थों द्वारा प्रतिपादित कैथी लिपि का प्रतिभाषित रूप है। विश्व में कोई भी भाषा या लिपि किसी जाति विशेष के नाम पर उल्लेखित नहीं है। एकमात्र "कैथी" ही ऐसी लिपि है जो कायस्थों द्वारा रची गई एवं उनके नाम पर उसका उपयोग किया गया।[29]

संदर्भ संकेत :

1. कायस्थों की सामाजिक पृष्ठभूमि, श्री अशोक कुमार वर्मा, पृष्ठ - 110-118
2. अंगिका लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ'
3. भारत का भाषा सर्वेक्षण, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, खंड-5, भाग-2, पृष्ठ-14-15
4. दि इन्डस पीपुल स्पीकर्स, शंकरानन्द स्वामी, पृष्ठ-65
5. उपरिवत्
6. अंग लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर प्रसाद 'शलभ'
7. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969, श्री राजेश्वर झा
8. डा0 तेजनारायण कुशवाहा, 'अंगिका भाषा का इतिहास, पृष्ठ 21-22
9. अंग लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', पृष्ठ -52
10. उपरिवत्
11. भारत का भाषा सर्वेक्षण, डा0 जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, पृष्ठ - 26

12. अंग लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', पृष्ठ -46
13. उपरिवत्
14. उपरिवत्
15. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ -62
16 कादम्बिनी, 1992
17. कादम्बिनी, 1999
18. अंग लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ' पृष्ठ-54
19. मैथिली साहित्य का इतिहास, डा0 गंगा नाथ झा 'श्रीश', पृष्ठ -413
20. मिथिलाक्षरक उद्‌भव ओ विकास, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ, 6, 7, 12
21. वही पृष्ठ-12
22. मैथिली साहित्यक आदिकाल, डा0 उमेश मिश्र, पृष्ठ - 18,19
23. मिथिलाक्षरक उद्‌भव ओ विकास, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ - 12
24. मैथिली साहित्यक आदिकाल, डा0 उमेश मिश्र, पृष्ठ - 39
25. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969
26. मैथिली साहित्य का आदिकाल, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ - 21
27. अंग लिपि का इतिहास, डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ', पृष्ठ -54
28. प्रोपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रिप्ट इन आईएसओ/आईईसी 10646, अंशुमान पांडेय, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, यू.एस.ए. पृष्ठ - 22
29. कैथी लिपि चित्रांशों की धरोहर, चि. मनोज सन्डवार श्री चित्रगुप्त आदि प्रबंधक समिति, पटना सिटी स्मारिका-2008

कैथी लिपि में धार्मिक ग्रंथ

साहित्यिक और धार्मिक कृत्य – कैथी लिपि का उपयोग प्रशासनिक और न्यायालय के कार्य में होने से यह साहित्यिक चीजों से अलग होती गयी । लेकिन कैथी की समाज में सर्वव्यापकता के कारण धार्मिक एवं साहित्यक कार्यों के लिए इस लिपि का उपयोग किया गया । चूंकि शुद्ध वर्तनी लिखने एवं टिप्पणी लिखने का एकमात्र साधन कैथी के पास उपलब्ध था, अतएव इसे दोनों कार्यों के लिए उपयोग किया जाने लगा । कैथी का उपयोग पाण्डुलिपियों की रचना में भी होने लगा । कैथी एवं देवनागरी, दोनों लिपियों का एक ही पाण्डुलिपि में उपयोग होना इस बात को दर्शाता है कि साहित्यिक क्षेत्र में कैथी का महत्व देवनागरी से बिलकुल अलग था ।[1]

प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ भागवत पुराण से लिया गया 'सुदामाचरित' नामक पोथी इसका एक उदाहरण है। पूर्णत: कैथी लिपि में तैयार यह किताब मारवाड़ी भाषा में है । यह पाण्डुलिपि राजस्थान के बिकानेर नामक शहर में पायी गयी है और यह उन्नीसवीं शताब्दी की किताब है । चूंकि इसकी भाषा मारवाड़ी है अतएव कैथी लिपि को महाजनी लिपि के रूप में भी दर्शाया गया है । कैथी लिपि को राजस्थान और गुजरात के विभिन्न इलाकों में महाजनी लिपि के रूप में भी जानी जाती है । लेकिन जब इसके अक्षरों की तुलना कैथी लिपि से की जाती है तो सामान्यत: सभी अक्षर कैथी से मिलते हैं । दूसरा उदाहरण 'मिरगावती' नामक ग्रंथ है। कुतबन नामक विद्वान ने इसकी रचना अवधी भाषा में की थी । इसकी रचना वर्ष 1503 में फारसी में हुई थी। सूफी के पांच प्रमुख पाण्डुलिपियों में से चार कैथी लिपि में लिखी गयी और एक फारसी में लिखी गयी । 16वीं शताब्दी में 'पद्मावत' नामक चर्चित ग्रंथ की रचना हुई। इसके रचनाकार मलिक मुहम्मद जायसी थे और इसकी रचना भी अवधी में हुई थी। फारसी लिपि में रचित इस ग्रंथ के खण्डों के कई पाण्डुलिपियां कैथी में पाई गई हैं ।[2]

हालांकि हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के लिए देवनागरी के प्रयोग को प्रधानता दी गयी, परन्तु धार्मिक ग्रंथों को तैयार करने में कैथी लिपि का भी प्रयोग किया गया। हिन्दू के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ 'महागणपतिस्त्रोत' की पाण्डुलिपि का महत्व इस मायने में बढ़ जाता है कि इसके पृष्ठों पर देवनागरी और कैथी दोनों लिपियों में प्रविष्टियां हैं। संस्कृत भाषा में श्लोक लिखे गए हैं जिसकी लिपि देवनागरी है, लेकिन श्लोक के अर्थ, हालांकि वे भी संस्कृत में ही हैं, ये मैथिली शैली के कैथी में लिखे गए हैं। इस ग्रंथ के अंतिम कुछ पृष्ठों पर भोजपुरी शैली के कैथी में प्रविष्टियां हैं। जीवागोस्वामी द्वारा रचित संकल्पपत्र, जिसे विद्वान मुखर्जी और राईट महोदय ने वसीयत दस्तावेज की संज्ञा दी है, इसकी रचना व्रजभाषी संस्कृत में और नागरी कैथी लिपि में की गयी है। इस पाण्डुलिपि में मुख्यरूप से वृंदावन में जीवा गोस्वामी द्वारा स्थापित चैतन्यपंथ गौड़िया वैष्णव संप्रदाय के मंदिरों के रख-रखाव, पुस्तकालयों की व्यवस्था में विस्तार से वर्णन है।[3]

तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस के कई पाण्डुलिपियां कैथी में हैं। 17वीं शताब्दी में तैयार किए गए पाण्डुलिपियों में कम से कम दस प्रतिशत पाण्डुलिपियां कैथी लिपि में हैं। भारत, इंग्लैंड एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में रक्षित कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथों की निम्न सूची है :

(क) महागणपतिस्त्रोत (रचनाकार-अज्ञात) : भिन्न-भिन्न श्लोक देवनागरी और कैथी लिपि में लिखे गए हैं। वर्तमान में यह पाण्डुलिपि पेंसेलवानिया विश्वविद्यालय में रक्षित है और इसका पोलमैन नंबर -1876, पेनसेलवानिया विश्वविद्यालय का नंबर-2584 है। इस पाण्डुलिपि का आकार 22.3 से.मी. गुना 11.9 से.मी. है और एक पृष्ठ में श्लोक के आठ से नौ पंक्तियां हैं। कैथी में जो श्लोक लिखे गए हैं उसका नाप लगभग एक तिहाई है।[4]

(ख) सुदामाचरित (सुदामा की कहानी) : यह पुस्तक वर्ष 1745-8 (संवत 1892) में बिकानेर में लिखी गयी। इस पुस्तक की भाषा मारवाड़ी है और यह कैथी लिपि में लिखी गई है। सुनहले रंग की स्याही में रचित यह पुस्तक वाटर कलर में भी अपारदर्शी है। यह किताब 43 फोलियो की है और एक पृष्ठ में 24 पंक्तियां हैं। पृष्ठ के बाहरी भाग में 42 चित्रावली दी गयी है जो पृष्ठ के चौथाई भाग में है। किताब की की आकृति 29 सेमी गुना 19.2 सेमी है।[5]

(ग) मिरगावती : कुतबन द्वारा रचित यह ग्रंथ मूल रूप से अवधी भाषा में और फारसी लिपि में 1503 ई. में तैयार किया गया था। सूफी साहित्य के छः प्रमुख ग्रंथों में से चार ग्रंथ कैथी लिपि में ही तैयार किए गए थे और वे निम्न थे - चौखम्भा (मूल-बनारस, लिपि-कैथी नागरी), भारत कला भवन (मूल-बनारस, लिपि-कैथी), अनूप संस्कृत पुस्तकालय (मूल- बिकानेर, लिपि-कैथी) मनेर शरीफ (मूल-पटना, लिपि फारसी) और दिल्ली (मूल-दिल्ली, लिपि फारसी), इकडाला (मूल-फतेहपुर, लिपि-कैथी)।[6]

पत्राचार एवं व्यक्तिगत संग्रह

कैथी का उपयोग व्यक्तिगत स्तर पर निजी पत्राचार, पारिवारिक दस्तावेज और व्यापारिक लेखा के लिए समाज में प्रचलित था । अंग्रेज हाकिम थॉमस मेटकॉफ द्वारा इस संबंध मे ठीक ही लिखा गया है कि कैथी एवं महाजनी लिपि सामान्य जन में सबसे अधिक प्रचलित थी । खासकर व्यापारिक समुदाय द्वारा कैथी लिपि का प्रयोग सबसे अधिक होता था । इसका मुख्य कारण यह था कि कैथी लिपि में लिखी गयी बातों को आसानी से बाहरी लोग नहीं पढ़ पाते थे ।

कैथी और प्रवासी समाज : उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में जब बहुत बड़ी संख्या में भोजपुरी भाषी त्रिनिदाद, मॉरीशस और अन्य देशों के प्रवास पर गए तो वे अपने साथ कैथी लिपि में लिखी गयी किताबें भी ले गए । ऐसे परिवारों की संख्या काफी है जो वर्तमान में विदेश में रह रहे हैं और जिनके पूर्वज भारत के बाहर होने के बावजूद कैथी लिपि का प्रयोग करते थे । कैथी में रचित हनुमान चालीसा एवं रामचरितमानस ऐसी पुस्तकों में सम्मिलित है, जो वे अपने साथ विदेश ले गए । ये पाण्डुलिपि हिन्दी में हैं परन्तु कैथी लिपि में लिखी गयी है । प्रवासी भारतीयों द्वारा कैथी लिपि का उपयोग किया जाना कैथी के सर्वहारा प्रकृति का परिचायक है ।

धार्मिक प्रचालन, ईसाई मिशन युग : वर्ष 1800-1858 ई०

प्रसिद्ध लेखक श्री अंशुमान पाण्डेय ने लिखा है कि भारत में आए ईसाई मिशनरीयों का मुख्य उद्देश्य धर्म प्रचार था । उन्हें यह ज्ञात था कि उत्तरी भारत में सबसे अधिक कैथी लिपि ही प्रचलित हैं । उनके सम्मुख धार्मिक दस्तावेजों का आम जनता में प्रचार था, अतएव उन्होंने कैथी लिपि में दस्तावेजों का मुद्रण आरंभ किया । सरकार द्वारा ज्योंही कैथी का मानकीकरण हुआ और कैथी में मेटल टाईप एवं मुहर विकसित किया गया, ईसाई मिशनरियों द्वारा कैथी में मेटल फौंट तैयार कर लिए गए । कैथी लिपि में अनेक बाईबिल का मुद्रण किया गया । उत्तरी भारत में कैथी की लोकप्रियता एवं महत्ता के कारण ही ईसाई मिशनरियों द्वारा पश्चिमी देशों के कई विश्वविद्यालयों में कैथी का प्रशिक्षण आरंभ किया गया । कैथी की पढ़ाई संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में, विशेषकर तुलनात्मक धार्मिक अध्ययन विभाग में होना आरंभ हुआ जहां ऐसे लोगों को हिन्दी का प्रशिक्षण देना था जो आनेवाले दिनों में मिशनरियों के लिए कार्यकर्त्ता के रूप में अपना योगदान देनेवाले थे । इन कार्यकर्ताओं को हिन्दी व्याकरण, हिन्दी के साहित्यिक एवं क्षेत्रीय स्वरूप, वाक्य विन्यास का साधारण नियम, हिन्दी रचना में साधारण अभ्यास और विशेषकर हिन्दी लिखने की देसी पद्धति – नागरी एवं कैथी का प्रशिक्षण दिया जाता था ।

बाप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी के वार्षिक प्रतिवेदन में इस बात का उल्लेख रहता था कि ईसाई दस्तावेज किन-किन भाषा और लिपियों में प्रकाशित किए गए हैं । इस सूची में कैथी का स्थान सर्वोपरि था क्योंकि सबसे अधिक दस्तावेज कैथी लिपि में ही प्रकाशित होते थे जिनकी भाषा हिन्दी होती थी । कैथी में प्रकाशित निम्न बाईबिल प्रमुख हैं :

(1) बाप्टिस्ट मिशन सोसाइटी और बाईबिल अनुवाद सोसाइटी : उक्त पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 1849 में किया गया। द फोर गॉस्पेल्स विद दी एक्ट्स ऑफ द अपोस्टल्स (धर्मग्रंथ के अंतिम भाग का पहला,दुसरा, तीसरा और चौथा खण्ड) इसका मुद्रण जे थॉमस द्वारा मिशनरीज सोसाइटी के लिए किया गया और यह कैथी लिपि में हिन्दी भाषा में मुद्रित है। पृष्ठों की संख्या 431 है।

उतपती की पुसतक।

THE BOOK

of

GENESIS

and

PART OF EXODUS,

IN KAITHI

CALCUTTA.

कैथी में छपे हुए "जिनेसिस" किताब (प्रकाशक कलकत्ता बाइबिल सोसाइटी-1851)
के प्रथम एवं द्वितीय पृष्ठ स्रोत-अंशुमान पांडेय

(2) कलकत्ता ऑक्जिलियरी बाईबिल सोसाइटी, 1852 - द फोर गॉस्पेल्स विद दी एक्टस ऑफ दी अपोस्टल्स । इसकी रचना भी हिन्दी भाषा में हुई और यह कैथी लिपि में है । इस किताब में पृष्ठों की संख्या 721 है और इसके भी प्रकाशक जे.थॉमस महोदय थे।

NEW TESTAMENT

JESUS CHRIST,

CALCUTTA:

''न्यू टेस्टामेंट'' का कैथी टाईप (प्रकाशन-बाइबिल ट्रांसलेशन सोसाइटी-1850) स्रोत-AP

(3) **कलकत्ता ऑक्जिलियरी बाईबिल सोसाइटी :** यह वर्ष 1913 में मुद्रित हुआ। सेंट जॉन के अनुसार गॉस्पेल्स विषय पर भोजपुरी भाषा में किन्तु कैथी लिपि में मुद्रित हुआ। इस किताब का दूसरा संस्करण सी.एल.रॉबर्ट्सन महोदय द्वारा किया गया जो रिजन्स बियाँड मिशनरीज यूनियन से संबद्ध थे। इस किताब के 90 पृष्ठों का संशोधन पी.ओ.बायन्ड द्वारा भी किया गया।

(4) **कलकत्ता ऑक्जिलियरी ब्रिटिश एण्ड फॉरेन बाईबिल सोसाइटी :** इस संस्था द्वारा भी वर्ष 1908 में एक किताब कैथी में प्रकाशित की गयी और इसका नाम था - दी गोस्पेल ऑफ सेंट मार्क इन नागपुरिया। इसका अनुवाद पी ईडिनेस ने किया था जो जर्मन इवानजेलिकल लुथेरन मिशन सोसाइटी से संबंधित थे। इस पुस्तक के पृष्ठों की संख्या- 116 है।

(5) **बाईबिल ट्रांसलेशन सोसाइटी :** इस संस्था द्वारा वर्ष 1850 में दी न्यू टेस्टामेंट ऑफ आवर लॉर्ड एण्ड सेवियर जेसस काईस्ट नामक पुस्तक का प्रकाशन किया गया जो हिन्दी भाषा और कैथी लिपि में थी। कलकत्ता बाप्टिस्ट मिशनरीज द्वारा ग्रीक भाषा से इस पुस्तक का अनुवाद किया गया था। अनुवाद में स्थानीय लोगों की मदद ली गयी थी। इस किताब का प्रकाशन भी जे0 थॉमस द्वारा बाप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता से किया गया था।

(6)**कलकत्ता बाईबिल सोसाइटी :** वर्ष 1851 में दी बुक ऑफ जेनेसिस एण्ड पार्ट ऑफ एक्सौड का प्रकाशन किया गया। यह पुस्तक भी हिन्दी भाषा में थी और कैथी लिपि में प्रकाशित की गयी थी। पुस्तक का प्रकाशन भी कलकत्ता बाईबिल सोसाइटी द्वारा बाप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता से किया गया।'

भारतीय भाषा एवं लिपि में पुस्तकों के प्रकाशन की दृष्टि से ईसाई मिशनरियों का योगदान महत्वपूर्ण है। श्रीरामपुर-मिशन और उसके प्रेस के संचालक विलियम कैरी ने इस कार्य का शुभारंभ किया। फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों ने भी अपने छात्रों के उपयोग के लिए पुस्तकें लिखीं, किन्तु ईसाई मिशनरियों ने धर्म-प्रचार के अतिरिक्त लोकहित की दृष्टि से भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। उन दिनों मिशनरियों की संस्थाएं बहुत अधिक संख्या में काम कर रही थीं। कलकत्ता स्कूल-बुक सोसाइटी, आगरा स्कूल बुक सोसाइटी, लुधियाना मिशन, सिकन्दरा छापाखाना, मिर्जापुर का ऑरफन प्रेस, आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी, बम्बई स्कूल बुक सोसाइटी, मुजफ्फरपुर का मिशन प्रेस, कलकत्ता बुक-ट्रैक्ट सोसाइटी और मिशन प्रेस, इलाहाबाद इस युग की प्रमुख प्रकाशन संस्थाएं थीं, जिन्होंने सन् 1854 ई0 तक हिन्दी में विभिन्न विषयों की पुस्तकें प्रकाशित कीं। इन संस्थाओं में से अधिकतर के पास अपने प्रेस थे। जिन संस्थाओं के पास अपना प्रेस नहीं था, वे अपनी पुस्तकें कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस और इलाहाबाद के मिशन प्रेस से छपाती थी। इनमें से अनेक संस्थाओं ने विभिन्न विद्यालयों की भी स्थापना की थी, जिनमें इनकी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। चौवन वर्षों तक मिशनरियों की प्रकाशन संस्थाओं ने ही हिन्दी-प्रकाशन का प्रतिनिधित्व किया है, इसलिए इस काल को हमने -'मिशन युग' माना है।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि इस युग में यद्यपि ईसाई मिशनों की प्रकाशन संस्थाओं की प्रधानता थी, तथापि कुछ भारतीयों और कुछ सरकारी प्रकाशनों ने भी इस दिशा में कार्य

किया। संस्कृत यन्त्रालय, केदार प्रभाकर प्रेस, सारसुधानिधि यन्त्रालय, क्षीरोदय सागर यन्त्र, गणपति कृष्णाजी प्रेस, हरिप्रकाश यन्त्रालय, सुधाकर यन्त्रालय, मतवा बनारसा अखबार आदि भारतीयों की निजी प्रकाशन संस्थाएं थीं। फोर्ट विलियम कॉलेज और इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस - दोनों सरकारी संस्थाएं थीं। इन सबका कार्य उल्लेखनीय है।

ईसाई मिशनरियों के पास टाइप प्रेस थे। उनकी पुस्तकों का मुद्रण साफ और आकर्षक होता था। पुस्तकों के मुखपृष्ठ बेलबूटे देकर चित्ताकर्षक बनाये जाते थे। भारतीयों के पास लीथो प्रेस थे। उनके प्रकाशन भी मुद्रण की दृष्टि से साफ और आकर्षक होते थे। लीथो पर छपनेवाली पुस्तकों के आरंभिक पृष्ठ पर लेखक का नाम छपता था। अंतिम पृष्ठ पर पुष्पिका दी जाती थी, जिसमें पुस्तक लेखक, मुद्रक और प्रकाशक के नामों के अतिरिक्त प्रकाशन-तिथि भी अंकित रहती थी।

श्रीरामपुर प्रोटेस्टेण्ट मिशनरी का प्रादुर्भाव 11 नवम्बर, 1975 ई. को कलकत्ता के निकट मदनावती में हो गया था। प्राय: पांच वर्षों बाद 16 नवम्बर, 1800 ई. को यह मिशन कलकत्ता से सोलह मील दूर स्थित श्रीरामपुर नामक स्थान में आ गया। उसके संस्थापकों में भाषाशास्त्री विलियम केरी, शिक्षाविद् जोशुआ मार्शमैन और मुद्रक विलियम वार्ड थे। विलियम केरी ने 47 पौण्ड में कलकत्ता में एक प्रेस खरीदकर मदनावती में स्थापित किया। वहां से यह श्रीरामपुर आया और वहीं से इसमें पुस्तकें छपने लगीं।विलियम वार्ड प्रशिक्षित मुद्रक था। विलियम वार्ड का सहयोग केरी के लिए मुद्रण प्रकाशन की दृष्टि से, वरदान प्रमाणित हुआ। केरी तथा मार्शमैन शिक्षण एवं लेखन कार्य करते थे और वार्ड उनकी रचनाओं को मुद्रित कर प्रकाश में लाता था।

श्रीरामपुर मिशन की मुद्रण संस्था में सन् 1813 ई. तक छह मुद्रण यन्त्र हो गये। श्रीरामपुर मिशन ने प्रकाशन का काम बाइबिल से प्रारंभ किया। उसका प्रमुख कार्य बाइबिल का भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा प्रकाशन था। बाइबिल मुद्रण कार्य वर्ष 1801 में आरंभ हुआ और वर्ष 1822 ई. तक वहां से लगभग पैंतीस भाषाओं में बाइबिल के मुद्रण और प्रकाशन हुए। इस मिशन ने सन् 1811 ई. में कैथी तथा देवनागरी लिपि में न्यू टेस्टामेण्ट मुद्रित किया, पर ये दोनों पुस्तकें अधूरी ही छप पाईं। इसके बाद धर्म की पोथी नाम से पाँच भागों में धार्मिक गद्य ग्रंथ का मुद्रण शुरू हुआ। इस ग्रंथ के पांचों भाग सन् 1811 ई. के मध्य छपे। श्रीरामपुर मिशन के संस्थापक एक-एक करके सन् 1837 ई. तक चल बसे। विलियम वार्ड की मृत्यु 7 मार्च, 1823 ई. को, विलियम केरी की जून, 1834 ई. को और मार्शमैन की 3 दिसम्बर, 1837 ई० को हो गई। मार्शमैन के निधन के साथ ही मिशन का प्रकाशन कार्य बन्द हो गया।

राजकीय मुहर में कैथी का प्रयोग

राजकीय मुहर : राजकीय मुहर में भी कैथी लिपि के उपयोग होने के प्रमाण मिल रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय, कलकत्ता (अपील) द्वारा जारी राजकीय मुहर में कैथी लिपि का उपयोग किया गया। कैथी के अतिरिक्त दो अन्य लिपियां, फारसी एवं बांग्ला का उपयोग भी राजकीय

मुहर के लिए किया गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राजकीय मुहर में कैथी का उपयोग किए जाने मात्र से ही इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजकीय स्तर पर कैथी लिपि की सर्वोच्च मान्यता थी । हालांकि मुहर की लिपि को देखने से इसे देवनागरी लिपि की संज्ञा दी जा सकती है, परन्तु राजकीय स्तर पर वर्ष 1850 तक देवनागरी लिपि की दूर-दूर तक मान्यता नहीं थी ।"



सुप्रिम सिविल कोर्ट अपील, कलकत्ता की मुहर (1850) मुहर के ऊपरी भाग फारसी (दो पंक्तियां) उसके बाद की दो पंक्तियां बांग्ला और नीचे की दो पंक्तियां कैथी में लिखी है-कैथी में मोहर अदालत दीवानी सदर 1850 वर्णित है-स्रोत-AP

कैथी में सूफी रचनाएं

सूफी कवि मल्लिक मुहम्मद जायसी की रचनाओं का संग्रह 'जायसी ग्रंथावली' - (सम्पादक-

माता प्रसाद गुप्त तथा प्रकाशक - हिन्दी एकेडमी, प्रयाग) में महाकवि जायसी कृत पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम तथा इसके अतिरिक्त एक छोटी सी और रचना है जो अभी तक अप्रकाशित थी और जिसके नाम के अभाव में सम्पादक ने 'महरी बाइसी' दिया है। सम्पादक ने कॉमनवेल्थ रिलेशन्स ऑफिस अर्थात् इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी की सात हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की हैं, जो कैथी, नागरी एवं फारसी लिपि में मुद्रित हैं। श्री चार्ल्स नेपियर ने अपने एक आलेख में जायसी ग्रंथावली से संबंधित श्री चन्द्रवली पाण्डेय के विचारों को संदर्भित करते हुए जायसी के ग्रंथों की लिपियों पर प्रकाश डाला है। यह आलेख नागरी प्रचारणी पत्रिका के अंक 4 सम्वत् 2009, पृष्ठ-331-341 में प्रकाशित हुआ है। इसके अनुसार जायसी ने इस्लामी सन् 927 हिजरी में 'पद्मावत' लिखा। यह प्रेमाख्यान का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह संपूर्ण ग्रंथ की मूल प्रति महाकवि जायसी ने कैथी लिपि में लिखी थी। श्री चंद्रावली पाण्डेय के अनुसार जायसी के समय में न तो व्यवस्थित उर्दू भाषा की उत्पत्ति हुई थी, और न भारत की भाषाओं को लिखने के लिए फारसी अक्षरों में आवश्यक विकास हुआ था। अर्थात्, जायसी ने उर्दू अक्षरों का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उस काल में ऐसे अक्षर विकसित नहीं थे। श्री चन्द्रावली पाण्डेय आगे लिखते हैं कि जायसी का उद्देश्य हिन्दुओं में सूफी मत का प्रचार था, इसलिए उन्होंने अपने ग्रंथों को कैथी लिपि में ही लिखा, क्योंकि कैथी उस समय प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत की जन लिपि थी। यह ज्ञातव्य है कि जायसी के ग्रंथों की मूल प्रति, जो उनके हाथ से लिखी गयी थी, वह अनुपलब्ध है। किन्तु आदि प्रतियों की अनुकृतियाँ की गयी हैं वह कैथी लिपि में है। 'पद्मावत' की तरह 'अखरावट' एवं 'आखिरी कलाम' की प्रतियां भी कैथी लिपि में है। जायसी ने 'आखिरी कलाम' में एक स्थान पर लिखा है -

भौ अवतार मोन नौ सदी।
तीस बरस ऊपर कवि बदी॥

अर्थात् नौवीं सदी हिजरी में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने अपनी अनमोल कृति 'पद्मावत' में शेरशाह को शाहेवक्त बतलाया है -

शेरशाह देहली सुल्तानू।
चारिउ खण्ड तपै जस भानू॥

शेरशाह का शासन-काल 947 हिजरी से आरंभ होता है। ज्ञातव्य है कि शेरशाह ने कैथी लिपि को अपने राज काज की लिपि के रूप में प्रयुक्त किया था। बंगाल के कवि 'अलावल' ने कैथी लिपि में लिखी 'पद्मावत' की प्रति से ही इसका अनुवाद बंगला में किया था। इन्होंने इस कैथी लिपि में लिखी प्रति को ही जायसी की हस्तलिखित प्रति के रूप में स्वीकार किया है॥।

सूफी कवि मुल्ला दाउद : साहित्यकार डॉ० रमेशचन्द्र वर्मा के अनुसार, प्रसिद्ध सूफी कवि मुल्ला दाउद का जन्म ग्राम-डगमरा, वर्तमान सुपौल जिला में हुआ था। इन्होंने लोकदेव लोरिक और उनकी प्रेयसी चन्दा से संबंधित 'चाँदायन' महाकाव्य की रचना की है। लोरिक की राजधानी सुपौल से आठ किमी. पूरब हरदी गढ़ में थी। इस ग्रंथ का सम्पादन माता प्रसाद

गुप्त ने किया है । मुल्ला दाउद फारसी, उर्दू तथा कैथी के विद्वान थे । इनके मित्र लिपिकर थे-नत्थन मल्लिक, जिनका उल्लेख इस महाकवि ने अपने ग्रंथ में किया है । नत्थन मल्लिक इनके घनिष्ठ मित्र थे । उन्होंने ही 'चाँदायन' को सामान्य जनता में प्रचारार्थ कैथी में अनुवाद किया था । वैसे इस महान कवि की जिस प्रति का सम्पादन श्री माताप्रसाद गुप्त ने किया - वह फारसी लिपि में थी । किन्तु, कोसी के पहले तक कैथी लिपि में लिखित यह ग्रंथ कोसी क्षेत्र में अधिक प्रचलित था । नत्थन मल्लिक कायस्थ लिपिकार थे । विद्वान सम्पादक ने मुल्ला दाउद का जन्म सम्वत् 1400 के आसपास माना है ।[12]

सूफी कवि किफायतउल्लाह : पूर्णिया पूर्व प्रखण्ड के 'दमका' गाँव में मौलवी किफायतउल्लाह का जन्म 1700 ई0 के आसपास हुआ था । उन्होंने किसी गायक से सुनी कथा को आधार बना कर 'विद्याधर' नामक प्रेम गाथात्मक काव्य-संग्रह की रचना की थी ।[13]

चंद्रभान राजा का नाउं विद्याधर बरनार ।
गीत सुना गायक मुख पोथी किया विचार ॥

किफायतउल्लाह कृत इस रचना की कलमी प्रति कैथी में है, जिसका उर्दू में प्रथम प्रकाशन 1938 ई0 में जहाँगीर प्रेस, किशनगंज से हुआ था । इसका सम्पादन मकबूल हुसैन मकैली ने किया था । विद्याधर सूफी परम्परा का ग्रंथ है । पूर्णिया जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री स्वा0 रूपलाल साहित्यरत्न ने बहुत पहले मूल कैथी से देवनागरी में इसका लिप्यन्तरण किया था । इस प्रेमकाव्य का रचनाकाल 1336 साल अथवा 1728 ई0 है ।[14]

संदर्भ संकेत :

1 से 7 - प्रोपोजल टू इनकोड दी कैथी स्क्रिप्ट - अंशुमान पांडेय - पृष्ठ - 18-22
8 आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका, डॉ0 धीरेन्द्रनाथ सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृष्ठ 48-50
9 प्रोपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रिप्ट - अंशुमान पांडेय, पृष्ठ -77
11-14, अंग लिपि का इतिहास - डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ', पृष्ठ - 60-62

कैथी के विभिन्न रूप

लेखक अंशुमान पांडेय ने लिखा है कि कैथी नामक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द कायस्थ से हुआ है जिसका तात्पर्य उत्तर भारत में लेखन कार्य करनेवाली जाति का बोध होता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में कैथी का अर्थ होता है - कायस्थ जाति द्वारा लिखी जानेवाली विधि । इसलिए कैथी लिपि को कैथीनागरी भी कहा जाता है । कैथीनागरी को लघुशब्द देकर सामान्य बोलचाल की भाषा में कैथी का नाम दिया गया जिसे तत्कालीन बिहार सरकार द्वारा राजकीय लिपि के नाम से अंगीकृत किया गया और रोमन लिपि में इसे स्वीकृत किया गया। अंग्रेज द्वारा तैयार किए जानेवाले शासकीय पन्नों में इसे कैथी का नाम दिया गया ।

परिभाषा : कैथी को तीन रूपों में परिभाषित किया जा सकता है -

(क) ऐतिहासिक लिपि जिसका उपयोग बिहार एवं उत्तरी भारत के जन समुदाय द्वारा किया जाता था।

(ख) उत्तरी भारत में व्यवहार किए जानेवाले लिपि कुल का एक सदस्य

(ग) लिखने की एक विधि

लिखने की विधि - महाजनी, मोदी, लंडा एवं कैथी लिपि समान विधि से लिखी जाती है। भिन्न-भिन्न भौगोलिक क्षेत्र में इन अक्षरों को अलग-अलग नाम से सम्बोधित किया जाता है । महाराष्ट्र में इसे मोदी, राजस्थान में महाजनी और पंजाब में इसे लंडा के नाम से जाना जाता है । जैसा कि नाम से विदित है, इन क्षेत्रों में इसे सामान्य दैनिक कार्यों के लिए एवं

शीघ्र गति से लिखने की विधि के रूप में जाना जाता है । इस विधि द्वारा लिखने से लिखावट में शुद्धता एवं निरंतरता का प्रवाह होता है । जिस प्रकार कैथी का अर्थ लेखन निकाला जाता है, उसी प्रकार महाजनी का अर्थ वाणिज्यिक या व्यापारिक, लंडा का अर्थ तेजी से चलना होता है । कैथी को सर्राफी अर्थात् बैंक से संबंधित कागजी व्यवस्था एवं बनियाई (व्यापार) से संबंधित कागज लिखने की विधि के रूप में भी परिभाषित किया जाता है ।[1]

लिपि का समूह - इस लिपि की उत्पत्ति नागरी शब्द से ही हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है - शहर में रहनेवाला अथवा शुद्ध किया हुआ । यह लिखने की ऐसी विधा के बारे में बतलाता है जिसका प्रयोग कुछ अलग लिखने के लिए किया जाता है । आजकल नागरी शब्द का सामान्य अर्थ ही देवनागरी के रूप में लिया जाता है, परन्तु नन्दीनागरी एवं जैननागरी नागरी से स्वतंत्र अलग लिखने की ऐतिहासिक लिपि के रूप में स्थापित है और इसे भी नागरी ही कहा जाता है । अत: नागरी शब्द से एक से अधिक लिपि के बारे में जानकारी मिलती है । नागरी लिपि से हमें गुप्त ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई एक अलग लिपि का बोध होता है । अन्य दो लिपियां जो गुप्त ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई उनके नाम कमश: शारदा लिपि और पूर्वी गौड़ीय अथवा प्राचीन बांग्ला लिपि है और इन्हीं दोनों लिपियों को कैथी का पूर्वज माना गया है । चूंकि सभी लिपियों की उत्पत्ति नागरी लिपि से हुई अत: इसे गुप्त लिपि के मूल एवं नागरी से विकसित कुल की लिपि मानी जाती है । इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है कि जिस प्रकार देवनागरी नागरी कुल से निकली हुई लिपि है उसी प्रकार कैथी भी नागरी कुल से निकली हुई लिपि है । दोनों लिपि एक ही कुल से निकली हुई लिपि है।

कैथी लिपि में लिखी जानेवाली भाषाएं - कैथी लिपि का उपयोग मगही, भोजपुरी, मैथिली एवं अवधी भाषाओं के लिए किया जाता था । वर्तमान में ये सभी भाषाएं देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । कैथी लिपि का उपयोग उर्दू भाषा जिसे उस समय "हिन्दुस्तानी" भाषा कहा जाता था, के लिए भी होता था। यह वर्तमान में उर्दू लिपि के रूप में विकसित हो गई है जो फारसी-अरबी कुल से संबंधित है ।

बिहारी - कई संदर्भों में यह उद्धृत किया गया है कि कैथी लिपि में बिहारी भाषा लिखी गई है । ऐसा ग्रियर्सन साहब के 'बिहारी' भाषा की चर्चा करने के बाद हुआ । परन्तु 'बिहारी' जैसी कोई भी पृथक भाषा नहीं है । इंडो-आर्यन समूह की उपकुल की भाषा भोजपुरी, मैथिली एवं मगही है और चूंकि यह तत्कालीन बिहार राज्य में प्रचलित थी अत: इसे बिहारी भाषा का नाम दिया गया है । ग्रियर्सन साहब स्वयं लिखते हैं कि बिहारी भाषा माने बिहार राज्य में बोली जानेवाली भाषा और बंगाल और पुरबिया हिन्दी के बीच के क्षेत्र की बोली जानेवाली भाषा । प्रसिद्ध भाषा विद्वान होर्नले के कहने का आशय भी यही है कि ये तीनों भाषाएं मगही, मैथिली और भोजपुरी ही हैं । इसी कारण कैथी लिपि को बिहारी लिपि भी कहा जाता है।

लेकिन यह पूर्णतः सही नहीं है। कैथी का प्रसार उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों तक हुआ। बिहारी के सीमावर्ती जिलों के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में कैथी के उपयोग होने के प्रमाण मिले हैं। अतः यह कहना कि कैथी सिर्फ बिहार राज्य की लिपि थी, इसके प्रसार के अध्ययन को छोटा करना ही है।

Tirhuti	Bhojpuri	Magahi	English	Tirhuti	Bhojpuri	Magahi	English
[illegible]	[illegible]	[illegible]	a	[illegible]	[illegible]	[illegible]	n
[illegible]	[illegible]	[illegible]	á	[illegible]	[illegible]	[illegible]	t
[illegible]	[illegible]	[illegible]	i	[illegible]	[illegible]	[illegible]	th
[illegible]	[illegible]	[illegible]	u	[illegible]	[illegible]	[illegible]	d
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ú	[illegible]	[illegible]	[illegible]	dh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	e	[illegible]	[illegible]	[illegible]	n
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ai	[illegible]	[illegible]	[illegible]	p
[illegible]	[illegible]	[illegible]	o	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ph
[illegible]	[illegible]	[illegible]	au	[illegible]	[illegible]	[illegible]	b
[illegible]	[illegible]	[illegible]	k	[illegible]	[illegible]	[illegible]	bh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	kh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	m
[illegible]	[illegible]	[illegible]	g	[illegible]	[illegible]	[illegible]	y-j
[illegible]	[illegible]	[illegible]	gh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	r
[illegible]	[illegible]	[illegible]	n	[illegible]	[illegible]	[illegible]	l
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ch	[illegible]	[illegible]	[illegible]	w-b
[illegible]	[illegible]	[illegible]	chh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	s
[illegible]	[illegible]	[illegible]	j	[illegible]	[illegible]	[illegible]	kh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	jh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	h
[illegible]	[illegible]	[illegible]	n				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	t				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	th				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	d				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	dh				

कैथी के तीन क्षेत्रीय स्वरूप तिरहुति (मैथिली) मगही और भोजपुरी का तुलनात्मक अध्ययन (मूल स्रोत-ग्रियर्सन) स्रोत-अंशुमान पांडेय

अवधी – अवधी भाषा के लिए कैथी लिपि का सामान्य रूप से उपयोग किया जाता था। ग्रियर्सन साहब के भाषा सर्वेक्षण (1904) के अनुसार अवधी भाषा का प्रयोग उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार एवं नेपाल के कुछ हिस्सों में किया जाता था। होर्नले (1880) ने लिखा है कि अवधी भाषा कैथी एवं देवनागरी, दोनों लिपियों में लिखी जाती थी परन्तु बीसवीं शताब्दी आते-आते देवनागरी लिपि कैथी के स्वरूप को अवधी भाषा लिखने के संदर्भ में पीछे छोड़ दिया और इसके बाद अवधी, देवनागरी में ही लिखी जाने लगी। देवनागरी लिपि में ही अवधी

भाषा लिखने के संबंध में सक्सेना (1937) ने भी मत प्रकट किया है ।

[illegible]

हस्तलिखित अवधी शैली की कैथी मूल स्रोत-ग्रियर्सन 1844 स्रोत-अंशुमन पांडेय

भोजपुरी – ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण में उल्लिखित है कि भोजपुरी भाषा का परंपरागत लिपि कैथी ही था । सिगेल (1988) के अनुसार उत्तर प्रदेश और नेपाल में भोजपुरी बोलनेवालों की अच्छी खासी तादाद है । इसके अतिरिक्त दक्षिणी एशिया के मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद, दक्षिणी अफ्रीका के सुरीनाम एवं फिजी जैसे राष्ट्रों में भोजपुरी बोलनेवालों की जनसंख्या काफी है । भोजपुरी भाषा के लिए अब कैथी के स्थान पर देवनागरी का ही प्रयोग होता है। श्री एम.वर्मा (2003) लिखते हैं कि भोजपुरी भाषा के लिए अभी भी कैथी लिपि का उपयोग

होता है परन्तु यह अनौपचारिक लेखन में होता है। उपर्युक्त तथ्यों की संपुष्टि इथलॉलॉग ने भी किया है ।

[illegible]

हस्तलिखित भोजपुरी शैली की कैथी मूल स्रोत ग्रियर्सन-1899 स्रोत-अंशुमन पांडेय

मगही – मगही भाषा के लिए भी कैथी ही परंपरागत लिपि थी । मगही भाषा बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल में बोली जाती है । अब मगही भाषा के लिए देवनागरी लिपि ही प्रधान रूप से लिखी जाती है । यह सामान्य औपचारिक लेखन एवं साहित्यिक लेखन, दोनों के लिए होता है । परन्तु कुछ स्थिति में कैथी का उपयोग मगही भाषा में लिखे जाने वाले

व्यक्तिगत पत्र एवं अर्द्ध न्यायिक दस्तावेज को तैयार करने के लिए किया जाता है ।

हस्तलिखित मगही शैली की कैथी मूल स्रोत ग्रियर्सन-1899, स्रोत अंशुमन पांडेय

[illegible]

हस्तलिखित मगही शैली की मैथिली भाषा में लिखित सामग्री स्रोत अंशुमन पांडेय

हस्तलिखित कैथी लिपि में मगही-95 स्रोत-अंशुमन पांडेय

मैथिली – मैथिली भाषा बिहार और नेपाल में बोली जाती है । वर्ष 2004 में भारतीय संविधान के अष्टम सूची में इसे शामिल किया गया । इसके बाद से ही मैथिली भारत सरकार के राजकाज की भाषा बन गई है । मैथिली भाषा परंपरागत रूप से तिरहुता (मिथिलाक्षर) में लिखी जाती थी । ब्राम्हण जाति के लोग मैथिली लिखने में मिथिलाक्षर का प्रयोग करते थे जबकि कायस्थ एवं अन्य जाति के लोग कैथी लिपि का प्रयोग करते थे । परन्तु बीसवीं शताब्दी आते-आते मैथिली लिखने में भी कैथी के स्थान पर देवनागरी लिपि का प्रयोग होने लगा।

हस्तलिखित मैथिली शैली की कैथी मूल स्रोत-ग्रियर्सन 1899 स्रोत-अंशुमन पांडेय

[illegible]

हस्तलिखित मैथिली शैली की कैथी मूल स्रोत-ग्रियर्सन 1899 स्रोत-अंशुमन पांडेय

उर्दू - वर्ष 1880 में परसियन-उर्दू लिपि के स्थान पर कैथी को न्यायालय के कार्य के लिए स्थापित किया गया। उसके बाद कैथी लिपि में ही उर्दू भाषा के लिखने का कार्य आरंभ हुआ। अंगरेज सरकार के समयावधि के सबसे अधिक उपलब्ध दस्तावेज कैथी लिपि एवं उर्दू भाषा में लिखे हुए हैं।

अन्य भाषाएं - कैथी लिपि प्रचलन के भौगोलिक क्षेत्र से सटे हुए जिलों में कैथी लिपि में कागजात लिखने का प्रचलन था। कैथी लिपि का उपयोग ऐसे कार्यों में बंगाल और बिहार के सीमावर्ती जिले जो वास्तविक रूप से बंगाल में पड़ते थे, में कैथी का उपयोग होता था।

राजस्थान के बाहरी इलाके में मारवाड़ी भाषा कैथी लिपि में लिखी जाती थी ।गुजरात में इस लिपि को जातीय लिपि का गौरव प्राप्त है जो वर्तमान पीढ़ी के लोगों को सब स्मरण हैं ।

सूर्यापुरी - ग्रियर्सन ने 'भारत के भाषा सर्वेक्षण के पृष्ठ-17 पर लिखा है कि बिहार के पूर्वी भाग के विभिन्न स्थानों में बोली जाने वाली मैथिली अन्ततः पूर्णियाँ के पूर्वी भाग में एक स्थानीय उपभाषा 'सिरिपुरिया' में विलीन हो जाती है । यह बंगाल की सीमा की क्षेत्रीय उपभाषा है तथा इसने मैथिली से बहुत अभिव्यक्ति तत्व ग्रहण किए हैं उतने बांग्ला से नहीं। यह भाषा बिहार की कैथी लिपि में ही लिखी जाती है । यही सिरिपुरिया उपभाषा अब 'सूर्यापुरी' कहलाती है । सूर्यापुरी संस्कृति बिहारी, बंगाली, नेपाली और भोट जाति की मिश्रित बोली, भाषा, रहन-सहन से समन्वित है । इनकी अपनी स्वतंत्र लिपि नहीं है । ये सामान्य 'कैथी' लिपि में ही लिखते हैं । 'सालमारी' इसका मुख्य स्थान है जहां से 'सूर्यापुरी' नामक एक मासिक पत्रिका हाल तक निकलती थीं ।

पूर्णिया क्षेत्र में कैथी लिपि लिखित बंगाली भाषा-स्रोत अंशुमान पांडेय

वर्ष 1903 में कैथी के संबंध में ग्रियर्सन ने लिखा कि यह लिपि उत्तर भरत में लेखन कार्य करनेवाले समुदाय 'कायस्थ' द्वारा प्रतिपादित लिपि है जो दैनिक कार्यों के लिए इसका उपयोग

करते थे । कैथी एक प्रकार से धर्मनिरपेक्ष लिपि के रूप में थी और इसका उपयोग समाज के हर जाति एवं वर्ग के लोग करते थे । कैथी का स्वरूप देवनागरी से भिन्न था । देवनागरी का उपयोग साहित्यिक एवं इससे संबंधित कार्यों के लिए होता था जबकि कैथी का उपयोग सामान्य जन द्वारा किया जाता था।

भारत में कैथी का उपयोग एवं इस लिपि की विशेषता को देखते हुए विद्वान इस लिपि को इंडो-आर्यन लिपि से संबंधित करते हैं । इंडो आर्यन लिपि समूह के अन्य लिपियों में बांग्ला, मैथिली एवं उड़िया को भी रखा गया है । प्रसिद्ध विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार इस समूह के लिपियों की उत्पत्ति मुख्यतः प्राचीन बांग्ला अथवा नागरी के गौड़ीय शाखा से हुई । उन्होंने आगे कहा कि सातवीं शताब्दी में गुप्त लिपि अथवा प्राचीन देवनागरी,जिसका उपयोग मुख्य रूप से उत्तरी एवं पश्चिमी भारत में होता था, मगध साम्राज्य तक पहुंचा और यही कैथी लिपि मगध साम्राज्य में आकर बस सी गयी । लिखने एवं पढ़ने में कैथी लिपि काफी आसान थी और इसी कारण इसका विकास उत्तरोत्तर होता चला गया। कैथी लिपि भोजपुरी, मगही क्षेत्र के अतिरिक्त मैथिली भाषी क्षेत्र तक जा पहुंची । इस समय मिथिला क्षेत्र में ब्राह्मण एवं अन्य उच्च वर्गीय जातियों में मैथिली लिपि (तिरहुता) का प्रचलन था। सामान्य जन द्वारा कैथी लिपि का ही उपयोग किया जाता था ।

कैथी लिपि का उपयोग समाज में किस समय से होना आरंभ हुआ, इसके बारे में मतभेद है। उपलब्ध प्रमाण के अनुसार सोलहवीं शताब्दी में कैथी स्वतंत्र लिपि के रूप में एवं समाज के सबसे प्रचलित लिपि के रूप में समाज में स्थापित हो गयी थी । इसी अवधि में शेर शाह सुरी (1486-1545) जो सुर राजवंश के संस्थापक थे, के शासकीय लिपि के रूप में कैथी को मान्यता मिल गई थी । इसी अवधि में कैथी का उपयोग साहित्यिक कार्यों में होना आरंभ हो गया था । इसके बाद कैथी लिपिकों के उपयोग की लिपि होकर नहीं रह गयी बल्कि सामान्य जन द्वारा इसका उपयोग होना आरंभ हो गया । उन्नीसवीं शताब्दी में कैथी को अंगरेज सरकार द्वारा शासकीय लिपि के रूप में मान्यता दी गयी और यह बिहार एवं एन.डब्ल्यू.पी एण्ड ओ. राज्यों के शासकीय लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया गया । साथ ही, इसी अवधि में कैथी लिपि में छपाई की सुगम व्यवस्था के लिए धातु के फॉंट का भी विकास किया गया।

कैथी की विशेषताएं

देवनागरी लिपि की उत्पत्ति ब्राह्मी से मानी जाती है, किन्तु कैथी की उत्पत्ति के संबंध में

विद्वान एकमत नहीं हैं। इतना सच है कि कैथी न तो देवनागरी से विकसित लिपि है और न ही देवनागरी की घसीट शैली से, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं।

Money

The modes of writing pies differ in different districts

Weight

Area

कैथी में अंक, मुद्रा, वजन और क्षेत्रफल लिखने के लिए चिन्ह-मूल स्रोत ग्रियर्सन (1899) प्लटे-प्ट) द्वितीय स्रोत-अंशुमान पांडेय-प्रोपोजल टू इनकोड कैथी स्क्रिपट पृष्ठ-52

देवनागरी और कैथी दोनों ही लिपियां ब्राह्मी से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। पंडित गौरीशंकर हीरानन्द ओझा के अनुसार देवनागरी नवीं शताब्दी के अंत अथवा दशमी शताब्दी के आरंभ में विकसित हुई (प्राचीन भारतीय लिपिमाला, पृष्ठ - 42)

अपनी किताब 'द ऑरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंगवेज' में प्रसिद्ध लेखक श्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने उत्तरी भारत की पश्चिमी लिपि को 'आदि नागरी' माना है। वे गुजरात, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश में उसका क्षेत्र दर्शाते हैं। डॉ० डेविड डिरिंगर पूर्वी गुप्त लिपि की पश्चिमी उपशाखा से सिद्धमातृका लिपि और उसी से नागरी का विकास मानते

है । उनके अनुसार 8वीं शताब्दी में नागरी का विकास हुआ । वर्ष 1991 में प्रकाशित भागलपुर विश्वविद्यालय की पत्रिका 'चम्पा' में प्रोफेसर डॉ0 शिवशंकर प्रसाद वर्मा ने उल्लेख किया है कि 10वीं और 11वीं शताब्दी की नागरी अपने प्रारंभिक अवस्था में नहीं अपितु विकसित अवस्था में थी ।

Tirhuti	Bhojpuri	Magahi	English	Tirhuti	Bhojpuri	Magahi	English
[illegible]	[illegible]	[illegible]	a	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ṇ
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ā	[illegible]	[illegible]	[illegible]	t
[illegible]	[illegible]	[illegible]	i	[illegible]	[illegible]	[illegible]	th
[illegible]	[illegible]	[illegible]	u	[illegible]	[illegible]	[illegible]	d
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ū	[illegible]	[illegible]	[illegible]	dh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	e	[illegible]	[illegible]	[illegible]	n
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ai	[illegible]	[illegible]	[illegible]	p
[illegible]	[illegible]	[illegible]	o	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ph
[illegible]	[illegible]	[illegible]	au	[illegible]	[illegible]	[illegible]	b
[illegible]	[illegible]	[illegible]	k	[illegible]	[illegible]	[illegible]	bh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	kh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	m
[illegible]	[illegible]	[illegible]	g	[illegible]	[illegible]	[illegible]	y·j
[illegible]	[illegible]	[illegible]	gh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	r
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ṅ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	l
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ch	[illegible]	[illegible]	[illegible]	v·b
[illegible]	[illegible]	[illegible]	chh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ś
[illegible]	[illegible]	[illegible]	j	[illegible]	[illegible]	[illegible]	kh
[illegible]	[illegible]	[illegible]	jh	[illegible]	[illegible]	[illegible]	s
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ñ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	h
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ṭ				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ṭh				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ḍ				
[illegible]	[illegible]	[illegible]	ḍh				

तिरहुती, भोजपुरी और मगही में लिखे जाने वाले कैथी अक्षर-स्रोत-अंशुमान पृष्ठ-50

कैथी की लोकप्रियता देवनागरी से अधिक थी, इस तथ्य को कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से रेखांकित किया है । डॉ0 शिवशंकर प्रसाद वर्मा 14वीं से 17वीं शताब्दी के मध्य मिले सैकड़ों हस्तलिखित पोथियों के अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्पष्ट: इस

भू-भाग की जनता के आम व्यवहार की और साहित्यिक/धार्मिक रचनाओं की लिपि मुख्यतः कैथी थी और इसके बाद देवनागरी का स्थान आता है ।

डा0 हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ' ने अपनी पुस्तक 'अंग लिपि का इतिहास' में कैथी लिपि की निम्न सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया है :

1. कैथी ब्राह्मी प्रसूत स्वतंत्र लिपि है ।
2. कैथी और आंगी एक ही लिपि है, नाम में अंतर है ।
3. कैथी और देवनागरी लिपि का समानान्तर विकास हुआ ।
4. काल-कम में देवनागरी साहित्य की लिपि हुई और कैथी आम व्यवहार की ।
5. उत्तर मध्य युग में कैथी समस्त उत्तर भारत की राष्ट्रीय लिपि थी ।
6. कैथी भोजपुरी की मान्य लिपि भी है ।
7. कैथी में शिरोरेखा नहीं होती ।
8. कैथी में मूल स्वर चार हैं - अ, इ, उ, ए ।
9. कैथी में दो दीर्घ स्वर हैं - आ और ऐ ।
10. कैथी में संयुक्त स्वर दो हैं - ओ, औ ।
11. कैथी में ऋ का प्रयोग नहीं होता ।
12. कैथी में ङ., ञ, ण, ष, स अक्षर नहीं होते हैं ।
13. कैथी वर्णमाला में 'ब' नहीं है । 'ब' और 'व' का काम व से चलता है ।
14. ङ., ष, का काम न से चलता है ।
15. ष, स का काम श से चलता है ।
16. कुछ को छोड़ कैथी के अक्षर बिना कलम उठाए लिखे जा सकते हैं ।
17. लिखने की त्वरा और सुविधा कैथी की अपनी निजी विशेषता है ।

कैथी में स्वर मात्राएं

कैथी लिपि की प्रमुख विशेषता में स्वरों की मात्राएं हैं । देवनागरी या अन्य लिपि की तुलना में स्वरों की कम मात्राएं कैथी में हैं । ऐसा क्यों हुआ यह तो अभी भी शोध का विषय है। विद्वानों का मानना है कि चूंकि यह जनलिपि थी, हस्तलिपि थी, इसलिए त्वरा (शीघ्रता) की सुविधा से इसमें मात्राओं की संख्या कम रखी गयी । पहले इसमें प्रिंटिंग की सुविधा नहीं थी । हालांकि बाद के वर्षों में जब कैथी में प्रिंटिंग की सुविधा विकसित हुई तो धीरे-धीरे स्वरों की मात्राएं भी बढ़ी । यही कारण है कि कैथी के स्वरूपों के अध्ययन में हम शनैः-शनैः परिवर्तन भी पाते हैं । मैथिली के प्रसिद्ध विद्वान पंडित गोविन्द झा ने इस पर प्रकाश डालते हुए बताया कि किसी भी लिपि में हम लिखें, उच्चारण में अन्तर बहुत कम ही शब्दों पर पड़ता है । ऐसी स्थिति में यदि हम उच्चारण चाहे ह्रस्व करें या दीर्घ, अर्थ तो वही रहता है । खासकर जनलिपि के रूप में प्रसिद्ध लिपियों में स्वर मात्राओं, व्याकरणों का अभाव दिखता है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता भी होती है । सामान्य जन अपनी भावना को व्यक्त करने का आसान रास्ता ढूंढते हैं और भाषा विज्ञान के झमेलों से दूर, सीधे तौर पर अपनी बात रखते हैं ।

श और ष में भिन्नता

बिहार और उत्तर प्रदेश की लिपियों में यह अन्तर सामान्य है । यह मैथिली में अधिकतर देखी जाती है और ग्रियर्सन सहित कई विद्वानों का ध्यान इस ओर गया भी है । 'खुसी' और 'खुशी', दोनों तरह से लिखे गए शब्द मिलते हैं । कैथी में 'ख' और देवनागरी के 'ष' में समानता है। इसी तरह कैथी अक्षर 'न' ज्ञ, आदि अनुनासिक शब्दों के प्रयोग में भी अन्तर स्पष्ट दिखते हैं । ब और व में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है । कैथी में हालांकि चन्द्रबिन्दु के प्रयोग भी कहीं-कहीं देखने को मिले हैं, परन्तु आमतौर पर अनुस्वार का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है । ग्रियर्सन जब कैथी फॉट को ढलवाने का कार्य कर रहे थे, उस समय कई तरह के सुधार किए गए । इससे पहले भी कैथी के अक्षरों में परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं ।

लिखावट का अन्तर

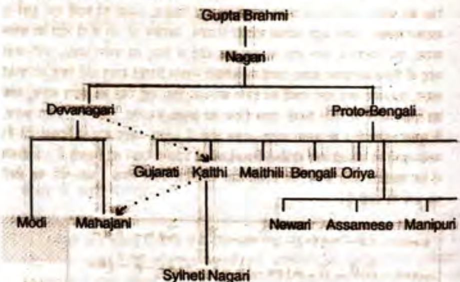
कैथी के लिखावट में कई तरह के अन्तर पाए गए हैं । दो शब्दों के बीच में एक छोटी सी रेखा का प्रयोग करना, पहला अक्षर अत्यधिक बड़ा लिखना, अक्षरों को कभी एक दूसरे से सटाकर लिखना, कभी बहुत अधिक हटाकर लिखना, पाराग्राफ के अंत में दो डंडा का प्रयोग करना, पूर्ण विराम के लिए डंडा के बाद एक छोटे से बिन्दु का प्रयोग करना, कहीं-कहीं जोड़ के चिन्ह का प्रयोग करना, शब्दों का संक्षिप्त स्वरूप लिखते समय छोटे बिन्दु का प्रयोग करना, बार-बार आने वाले शब्दों को इंगित करने के लिए टेढ़ी रेखा का प्रयोग करना, अंक का प्रयोग करने से पहले किसी खास चिन्ह का प्रयोग कर देना, नुक्ता का प्रयोग करना, ये मुख्य अन्तर हैं । ये अन्तर अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग रूप से दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो एक ही गांव में कैथी लिखने की दो शैलियां देखने को मिलती हैं । जनलिपि में यह स्वतंत्रता होती है कि वह अपनी बात को किस प्रकार लिखे । धीरे-धीरे यह शैली का रूप ले लेती है।

(a)

(b)

अन्य लिपियों के साथ कैथी का संबंध

जिस प्रकार देवनागरी, गुजराती, बांग्ला लिपियों का संबंध एक दूसरे से है, उसी प्रकार कैथी का संबंध भी अन्य लिपियों से है । जैसा कि पहले बताया गया कि उत्तर भारत में प्रचलित ब्राह्मी लिपियों से ही ये सभी लिपियां उद्भूत हुई और कैथी का उद्गम स्त्रोत भी ब्राह्मी ही है । कैथी मुख्य रूप से देवनागरी और गुजराती, इन दो लिपियों के बहुत ही समान मानी गयी है । परन्तु इन दोनों लिपियों से कैथी में कुछ अन्तर भी पाए हैं । यह लिखने का कोई ठोस आधार उपलब्ध नहीं है कि कैथी का उद्गम गुजराती से हुआ अथवा नहीं ? मैथिली के प्रसिद्ध विद्वान गोविन्द झा ने बताया कि पहले गुजरात और महाराष्ट्र में जो लिपियां प्रचलित थीं, वे व्यापारी वर्ग के काम में आती थीं और इन व्यापारियों के यहां रोजमर्रा के काम-काज के लिए महाजनी लिपि या सिलोटी नागरी लिपि का प्रयोग होता था । महाजनी और कैथी वस्तुतः एक ही लिपि हैं । धीरे-धीरे दोनों में थोड़ा अन्तर आया । वर्तमान गुजराती लिपि इन्हीं दोनों लिपियों से निकली हैं ।



नागरी कुल की लिपियों का कैथी से संबंध स्रोत

विद्वान भाषाविद होर्नले साहब उत्तर भारत की लिपियों के चार मुख्य स्त्रोत ही मानते हैं - कैथी, बांग्ला, उड़िया और गुरुमुखी । उनका मानना है कि इन चारों लिपियों में सबसे अधिक प्रचलित कैथी ही थी क्योंकि कैथी या इसके थोड़े से बदले हुए स्वरूप का प्रयोग पश्चिमी भारत, मराठा और गुजराती क्षेत्र में होता था । यहां तक कि इसके प्रयोग के चिन्ह उत्तरी भारत के क्षेत्रों में भी मिले हैं । होर्नले ने स्पष्ट मत प्रकट किया है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र में जितनी लिपियां हैं, वे सब कैथी से ही निकली हैं । इसके अतिरिक्त नागरी या देवनागरी और महाजनी और कोठियाल, दो स्त्रोत हैं । होर्नले का मत है कि कैथी का परिष्कृत रूप ही नागरी है और महाजनी को उन्होंने कैथी का एक भ्रष्ट स्वरूप अथवा प्राचीन स्वरूप बताया है।

कैथी एवं गुजराती

कैथी को लिपि का एक वर्ग या समूह माना गया है । हालाँकि उत्तर भारत में प्रचलित सभी लिपियों का उद्‌गम स्थल ब्राह्मी को माना गया है परन्तु गुजराती लिपि के विकास में कैथी का सबसे अधिक योगदान माना गया है । इसकी सबसे अधिक संभावना है कि गुजराती लिपि का विकास कैथी लिपि पर ही आधारित था । इसी आधार पर ग्रियर्सन ने भारत का भाषा सर्वेक्षण में स्पष्ट तौर पर लिखा है कि कैथी का प्रयोग उत्तर भारत में गुजरात के समुद्र तट से लेकर कोसी नदी के तटवर्ती इलाकों तक होता था । कैथी और गुजराती में सबसे बड़ी समानता है कि दोनों लिपियों में शिरोरेखा नहीं होती । ग्रियर्सन ने भी लिखा है कि गुजरात में जिस लिपि का प्रयोग किया जाता है वह कैथी ही है । कैथी और गुजराती के उच्चारण से एक ही लिपि का बोध इन क्षेत्रों में होता है । बाईबिल के संक्षिप्त अंशों की किताब 'बुक ऑफ ए थाउजेन्ड टंग' में लिखा गया और इसका प्रिंटिंग गुजराती अथवा कैथी में किया गया, यह उल्लेख भी मिला है । हालाँकि उस समय कैथी का प्रयोग नहीं कर 'बिहारी' शब्द का प्रयोग किया गया, परन्तु ग्रियर्सन का मत है कि यह बिहारी कैथी ही है ।

	KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI		KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI
ka	𑂍	ક	क	ꠇ	tha	𑂟	થ	थ	ꠕ
kha	𑂎	ખ	ख	ꠈ	da	𑂠	દ	द	ꠖ
ga	𑂏	ગ	ग	ꠉ	dha	𑂡	ધ	ध	ꠗ
gha	𑂐	ઘ	घ	ꠊ	na	𑂢	ન	न	ꠘ
na	𑂑	ઙ	ङ	–	pa	𑂣	પ	प	ꠙ
cha	𑂒	ચ	च	ꠌ	pha	𑂤	ફ	फ	ꠚ
chha	𑂓	છ	छ	ꠍ	ba	𑂥	બ	ब	ꠛ
ja	𑂔	જ	ज	ꠎ	bha	𑂦	ભ	भ	ꠜ
jha	𑂕	ઝ	झ	ꠏ	ma	𑂧	મ	म	ꠝ
na	𑂖	ઞ	ञ		ya	𑂨	ય	य	–
ta	𑂗	ટ	ट	ꠐ	ra	𑂩	ર	र	ꠞ
tha	𑂘	ઠ	ठ	ꠑ	la	𑂪	લ	ल	ꠟ
da	𑂙	ડ	ड	ꠒ	la		ળ	ळ	
ra	𑂚	–	ड़	–	va	𑂫	વ	व	ꠠ
dha	𑂛	ઢ	ढ	ꠓ	śa	𑂬	શ	श	ꠡ
rha	𑂜	–	ढ़	–	sa	𑂭	ષ	ष	–
na	𑂝	ણ	ण	–	sa	𑂮	સ	स	–
ta	𑂞	ત	त	ꠔ	ha	𑂯	હ	ह	ꠢ

कैथी, गुजराती, देवनागरी और सिलहौटी नागरी अक्षरों का तुलनात्मक अध्ययन तालिका, स्रोत-अंशुमान-पृष्ठ-44

स्वतंत्र स्वर

	KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI
a	𑂃	અ	अ	-
ā	𑂄	આ	आ	ꠀ
i	𑂅	ઇ	इ	ꠁ
ī	𑂆	ઈ	ई	-
u	𑂇	ઉ	उ	ꠃ
ū	𑂈	ઊ	ऊ	—
ṛ	-	ઋ	ऋ	—
e	𑂉	એ	ए	ꠄ
ai	𑂊	ઐ	ऐ	[illegible]
o	𑂋	ઓ	ओ	ꠅ
au	𑂌	ઔ	औ	

आश्रित स्वर

	KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI
-a	—	—		—
ā	𑂰	ા	ा	ꠣ
-i	𑂱	િ	ि	ꠤ
-ī	𑂲	ી	ी	—
-u	𑂳	ુ	ु	ꠥ
-ū	𑂴	ૂ	ू	-
-ṛ	-	ૃ	ृ	—
-e	𑂵	ે	े	ꠦ
-ai	𑂶	ૈ	ै	[illegible]
-o	𑂷	ો	ो	ꠧ
-au	𑂸	ૌ	ौ	—

	KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI
0	०	૦	०	০
1	१	૧	१	১
2	२	૨	२	২
3	३	૩	३	৩
4	४	૪	४	৪

	KAITHI	GUJARATI	DEVA NAGARI	SYLOTI NAGRI
5	५	૫	५	৫
6	६	૬	६	৬
7	७	૭	७	৭
8	८	૮	८	৮
9	९	૯	९	৯

कैथी, गुजराती, देवनागरी और सिलहौटी नागरी अंकों का तुलनात्मक अध्ययन तालिका,
स्रोत-अंशुमान-पृष्ठ-45

गियर्सन ने 1903 में लिखा कि गुजराती लिपि का मुख्य आधार कैथी ही है और कैथी लिपि को ही आधार बनाकर उत्तरी भारत की अन्य लिपियां विकसित हुई। लेकिन ग्रियर्सन ने ही वर्ष 1899 में इस बात की चर्चा भी की कि गुजराती लिपि को ऊपरी भाग में महाजनी लिपि कहा जाता है जिसकी चर्चा वनिया या सर्राफी लिपि के रूप में भी की जाती है। ग्रियर्सन ने आगे लिखा कि मोदी, गुजराती,शारदा, लंडा और कैथी के अक्षरों में समानता है और इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त सभी लिपियां कैथी से ही निकली हैं। इनमें

से कई हस्तलिपि के 'कर्सिव' स्वरूप में हैं तो प्रिंटिंग फॉट विकसित होने के कारण कुछ अन्तर आ गए। देवनागरी की चर्चा करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत में लिखावट के स्वरूप के अन्तर देवनागरी से ग्रहण किए गए। हालांकि लिपि के वैज्ञानिक अध्ययन से इन तथ्यों की पुष्टि होनी है कि इन लिपियों के बीच में क्या अन्योन्याश्रित सम्बन्ध थे।

[illegible]

[illegible]

किसी मानुस के दो बेटे थे। उन में से लहुरे बेटे ने बाप से कहा कि बाप आप के धन में जो मेरा बखरा हो उसको मुझे दे दीजिये। तब उसने अपना धन उनमें बाँट दिया। बहुत दिन नहीं बीते, कि लहुरा बेटा सब कुछ बटोर दूर देस चला गया और वहाँ लुचपन में दिन बितावते अपना धन उड़ा दिया। जब वह सब कुछ उड़ा चुका तब उस देस में अकाल पड़ा और वह कंगाल हो गया। तब वह उस देस के किसी भले मानुस के यहाँ जाकर रहने लगा जिसने उसको अपने खेत में सूअर चराने को भेजा। और वह चाहता था, कि मैं अपना पेट उन छीमियों से भरूँ जिन्हें सूअर खाते हैं पर कोई उसको कुछ नहीं देता था। तब उसको चेत हुआ और कहने

कैथी, गुजराती और देवनागरी का तुलनात्मक अध्ययन स्रोत-अंशुमान पांडे

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ च छ

ज झ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ फ ब भ म य

र ल व श ष स ह का कि की कु कू के कै को कौ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

गुजराती लिपि

અ આ ઇ ઈ ઉ ઊ ઋ ૠ ઌ એ ઐ ઓ ઔ અં અઃ ક ખ ગ

ઘ ઙ ચ છ જ ઝ ઞ ટ ઠ ડ ઢ ણ ત થ દ ધ ન પ ફ બ

ભ મ ય ર લ વ શ ષ સ હ ળ કા કિ કી કુ કૂ કે કૈ

કો કૌ કં કઃ ૧ ૨ ૩ ૪ ૫ ૬ ૭ ૮ ૯.

कैथी, गुजराती और देवनागरी का तुलनात्मक अध्ययन-स्रोत-अंशुमान पांडे

स्वयं ग्रियर्सन ने एक अलग तथ्य की व्याख्या की है। इन्होंने कैथी को लिपि के रूप में परिभाषित नहीं कर, एक विशेष वर्ग द्वारा प्रयोग की जानेवाली लिपि के रूप में भी परिभाषित किया है। उन्होंने बिहार में प्रचलित और गुजरात में प्रचलित कैथी में समानता और असमानता की चर्चा करते हुए लिखा है कि एक परिवार यहां तक कि एक व्यक्ति द्वारा अलग-अलग ढंग से कैथी लिखी जाती है। अंग्रेज विद्वान डेविड डिरिंगर महोदय ने बिहारी कैथी और गुजराती कैथी में स्पष्ट अन्तर को दर्शाया है। उन्होंने कहा कि कैथी के बिहारी स्वरूप और गुजराती

स्वरूप के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गुजराती कैथी अधिक विकसित है।

शारदा	गुरुमुखी	कैथी	बंगला	मैथिली	उत्कल	गुजराती	देव नागरी
1	1	1	1	1	1	1	1
2	2	2	2	2	2	2	2
3	3	3	3	3	3	3	3
4	4	4	4	4	4	4	4
5	5	5	5	5	5	5	5
6	6	6	6	6	6	6	6
7	7	7	7	7	7	7	7
8	8	8	8	8	8	8	8
9	9	9	9	9	9	9	9
10	10	10	10	10	10	10	10

कैथी एवं अन्य लिपियों का तुलनात्मक तालिका, स्रोत-अंशुमन पांडे

परन्तु ग्रियर्सन इन मतों से पुनः थोड़ा अलग मत का उल्लेख करते हैं। उन्होंने गुजराती कैथी में लिखित दस्तावेजों को बिहार के कैथी जाननेवाले पटवारी (तिरहुतिया पटवारी) को पढ़ने के लिए दिया और उन्होंने गुजराती कैथी लगभग सामान्य तरीके से पढ़ दिया। ग्रियर्सन ने उल्लेख किया कि तिरहुतिया पटवारी को गुजराती कैथी को पढ़ने में जो थोड़ी-बहुत कठिनाई हुई, वह भौगोलिक क्षेत्र में अन्तर में व्यक्ति विशेष के लिखने की विधि में अन्तर के कारण ही हुआ, अन्यथा तिरहुतिया कैथी और गुजराती कैथी में बहुत अधिक समानता है। उन्होंने फोंट के अध्ययन से इस बात को स्पष्ट किया कि गुजराती, कैथी और गुरुमुखी का एक

ही फॉंट है, थोड़ी बहुत असमानता है । उत्तर भारत के बहुत बड़े भू-भाग में कैथी की उपयोगिता को देखते हुए कैथी फौंट के विकास का निर्णय तत्कालीन सरकार द्वारा लिया गया और लगभग उसी अवधि में गुजराती फौंट का भी विकास हुआ ।

	A	B	C	D	E
KA	𑂍	𑂍	𑂍	𑂍	𑂍
KHA	𑂎	𑂎	𑂎	𑂎	𑂎
GA	𑂏	𑂏	𑂏	𑂏	𑂏
GHA	𑂐	𑂐	𑂐	𑂐	𑂐
NGA	—		—	𑂑	𑂑
CA	𑂒	𑂒	𑂒	𑂒	𑂒
CHA	𑂓	𑂓	𑂓	𑂓	𑂓
JA	𑂔	𑂔	𑂔	𑂔	𑂔
JHA	𑂕	𑂕	𑂕	𑂕	𑂕
NYA	—		—	𑂖	𑂖
TTA	𑂗	𑂗	𑂗	𑂗	𑂗
TTHA	𑂘	𑂘	𑂘	𑂘	𑂘
DDA	𑂙	𑂙	𑂙	𑂙	𑂙
DDDHA	—	𑂚	𑂚	𑂚	𑂚
DDHA	𑂛	𑂛	𑂛	𑂛	𑂛
RHA	𑂜	𑂜	𑂜	𑂜	𑂜
NNA	—	—	𑂝	𑂝	𑂝
TA	𑂞	𑂞	𑂞	𑂞	𑂞

	A	B	C	D	E
THA	𑂟	𑂟	𑂟	𑂟	𑂟
DA	𑂠	𑂠	𑂠	𑂠	𑂠
DHA	𑂡	𑂡	𑂡	𑂡	𑂡
NA	𑂢	𑂢	𑂢	𑂢	𑂢
PA	𑂣	𑂣	𑂣	𑂣	𑂣
PHA	𑂤	𑂤	𑂤	𑂤	𑂤
BA	𑂥	𑂥	𑂥	𑂥	𑂥
BHA	𑂦	𑂦	𑂦	𑂦	𑂦
MA	𑂧	𑂧	𑂧	𑂧	𑂧
YA	𑂨	𑂨	𑂨	𑂨	𑂨
RA	𑂩	𑂩	𑂩	𑂩	𑂩
LA	𑂪	𑂪	𑂪	𑂪	𑂪
VA	𑂫	𑂫	𑂫	𑂫	𑂫
SHA	𑂬	𑂬	𑂬	𑂬	𑂬
SSA	𑂭	—	𑂭	𑂭	𑂭
SA	𑂮	𑂮	𑂮	𑂮	𑂮
HA	𑂯	𑂯	𑂯	𑂯	𑂯

लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में ग्रियर्सन द्वारा उपयोग किए गए कैथी के अक्षर (A & B) बापटिस्ट मिशन प्रेस द्वारा उपयोग किए गए कैथी के अक्षर (C & D) अंशुमान पांडेय द्वारा डिजिटल फौंट के रूप में विकास किए गए कैथी के अक्षर (E) स्रोत अंशुमान-6

कैथी और देवनागरी

कई विद्वानों ने कैथी और देवनागरी के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया है और सामान्य मत यही है कि देवनागरी की हस्तलिपि कैथी है और देवनागरी लिपि को जल्दी-जल्दी लिखने के लिए, घसीट कर लिखने के लिए, जन सामान्य के लिए जो लिपि विकसित हुई, वही

कैथी कहलायी । इसलिए इसे देवनागरी का भ्रष्ट स्वरूप, परिवर्तित रूप या घसीटा शैली भी कहा जाता है । लेकिन ऐसे अध्ययनों का वैज्ञानिक स्वरूप नहीं है । उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देवनागरी से कैथी निकली और इसी से इसका स्वरूप विकसित हुआ । परन्तु लिपि के अध्ययनकर्त्ताओं का एक वर्ग यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि देवनागरी के समानान्तर इसका विकास हुआ, बल्कि उनका कहना है कि कैथी का विकास देवनागरी से अलग हुआ । इस प्रकार वे देवनागरी से निकली हुई लिपि कैथी है, इसे मानने के लिए तैयार नहीं हैं । इन विद्वानों में सबसे प्रमुख ग्रियर्सन का नाम आता है जिन्होंने कैथी पर विशेष रूप से कार्य किया । इनका कहना है कि कैथी का विकास देवनागरी से सीधे तौर पर नहीं हुआ । इनका स्पष्ट मत है कि जहां तक देवनागरी और कैथी के अक्षरों में समानता का प्रश्न है तो ऐसी समानता अन्य लिपियों में भी पाई गयी है और इस आधार यह कहना उचित नहीं है कि देवनागरी से ही कैथी की उत्पत्ति हुई है । ग्रियर्सन का मत है कि नागरी कुल से देवनागरी की उत्पत्ति भी हुई और कैथीनागरी की भी ।

Deva Nagari	Kayathi	Mahajani	English	Deva Nagari	Kayathi	Mahajani	English	Deva Nagari	Kayathi	Mahajani	English
अ	[illegible]	[illegible]	a	ङ	[illegible]	[illegible]	n	न	[illegible]	[illegible]	n
आ	[illegible]	[illegible]	a	च	[illegible]	[illegible]	ch	प	[illegible]	[illegible]	p
इ	[illegible]	[illegible]	i	छ	[illegible]	[illegible]	chh	फ	[illegible]	[illegible]	ph
ई	[illegible]	[illegible]	i	ज	[illegible]	[illegible]	j	ब	[illegible]	[illegible]	b
उ	[illegible]	[illegible]	u	झ	[illegible]	[illegible]	jh	भ	[illegible]	[illegible]	bh
ऊ	[illegible]	[illegible]	u	ञ	[illegible]	[illegible]	n	म	[illegible]	[illegible]	m
ऋ	[illegible]	[illegible]	ri	ट	[illegible]	[illegible]	t	य	[illegible]	[illegible]	y.j
ए	[illegible]	[illegible]	e	ठ	[illegible]	[illegible]	th	र	[illegible]	[illegible]	r
ऐ	[illegible]	[illegible]	ai	ड	[illegible]	[illegible]	d	ल	[illegible]	[illegible]	l
ओ	[illegible]	[illegible]	o	ढ	[illegible]	[illegible]	dh	व	[illegible]	[illegible]	v.b
औ	[illegible]	[illegible]	au	ण	[illegible]	[illegible]	n	श	[illegible]	[illegible]	s
क	[illegible]	[illegible]	k	त	[illegible]	[illegible]	t	ष	[illegible]	[illegible]	sh.kh
ख	[illegible]	[illegible]	kh	थ	[illegible]	[illegible]	th	स	[illegible]	[illegible]	s
ग	[illegible]	[illegible]	g	द	[illegible]	[illegible]	d	ह	[illegible]	[illegible]	h
घ	[illegible]	[illegible]	gh	ध	[illegible]	[illegible]	dh				

स्वरों का संयोजन

Deva Nagari	Kayathi	Mahajani	English	Deva Nagari	Kayathi	Mahajani	English
अक	[illegible]	[illegible]	akau	ऋक	[illegible]	[illegible]	rikri
आका	[illegible]	[illegible]	akai	एके	[illegible]	[illegible]	eke
इकि	[illegible]	[illegible]	iki	ऐकै	[illegible]	[illegible]	aikai
ईकी	[illegible]	[illegible]	iki	ओको	[illegible]	[illegible]	oko
उकु	[illegible]	[illegible]	uku	औकौ	[illegible]	[illegible]	aukau
ऊकू	[illegible]	[illegible]	uku				

कैथी, देवनागरी और महाजनी का तुलनात्मक अध्ययन-स्रोत अंशुमन पांडे

	A	B	C	D	E
A	अ	अ	अ	अ	अ
AA	आ	आ	आ	आ	आ
I	इ	इ	इ	इ	इ
I	ई	ई	ई	ई	ई
U	उ	उ	उ	उ	उ
UU	ऊ	ऊ	ऊ	ऊ	ऊ

	A	B	C	D	E
E	ए	ए	ए	ए	ए
AI	ऐ	ऐ	ऐ	ऐ	ऐ
O	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ
AU	औ	औ	औ	औ	औ
AM	अं	अं	अं	अं	अं
AH	अः	अः	—	अः	अः

उपरित् स्वर, अंशुमान-7

	Tirhuti	Bhojpuri	Magahi	
NGA	ङ	ङ	ङ	ङ
NYA	ञ	ञ	ञ	ञ
NNA	ण	ण	ण	ण

उपरित् अनुनासिक अक्षर, अंशुमान-7

(a)

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(b)

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कैथी शब्द/वाक्य लिखते समय हाईफेन के प्रयोग का नमूना-स्रोत-अंशुमान-29

जिस प्रकार अंग्रेजी के हस्तलिखित स्वरूप और प्रिंटिंग स्वरूप में अन्तर पाए जाते हैं, लगभग वही स्थिति कैथी की है । ग्रियर्सन का मत है कि कैथी और देवनागरी में मुख्य अन्तर लिखने की विधि की रही है । सुलेख के रूप में देवनागरी का प्रयोग होता था और 'कर्सिव' स्वरूप में कैथी का उपयोग होता था । लेकिन दोनों में इतना ही अन्तर नहीं है । ऐसा समझने वाले दोनों लिपियों को ठीक से नहीं समझते। दोनों के हस्तलिखित स्वरूप और छपाई स्वरूप में अन्तर है । इन अन्तरों को लिपियों के उपयोग क्षेत्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है । एक ओर जहां देवनागरी का उपयोग संस्कृत और हिन्दी के लिए किया गया वहीं कैथी का उपयोग भोजपुरी, मगही और मैथिली क्षेत्रों में बहुतायत से किया गया। इसका अर्थ हुआ कि आम जनता, खासकर ग्रामीण जनता में कैथी का उपयोग हुआ । देवनागरी का उपयोग संस्कृत भाषा के लिए इसलिए किया गया क्योंकि इसके पूर्ण स्वरूप थे । कैथी का कभी भी पूर्ण स्वरूप नहीं रहा और इसलिए यह विकसित भाषा के लिए उपयुक्त नहीं समझी गयी।

उपरिवत् अनुनासिक अक्षर, अंशुमान-30

कैथी के 'डंडा' और देवनागरी के डंडा में अंतर अंशुमान-30

कैथी के 'डंडा' और देवनागरी के डंडा में अंतर अंशुमान-30

कैथी और सिलोटी नागरी

जेम्स लॉयड विलियम्स नामक विद्वान द्वारा सिलोटी नागरी पर विशेष अध्ययन किया गया। उन्होंने लिखा है कि सिलोटी नागरी भी कैथी का ही एक रूप है। उन्होंने आगे लिखा है कि जहां गुजराती को कैथी समूह की लिपि ही मानी गयी है वहीं पूर्वी क्षेत्र में कैथी सिलोटी स्वरूप में थी। इनके अनुसार सिलोटी नागरी सबसे अधिक मगही कैथी से मिलता-जुलता है।

Lautwert	Proto Bengali	Bengali	Orissisch (Oriya)	Gujarati	Kaithi	Kaithi	Lautwert	Proto Bengali	Bengali	Orissisch (Oriya)	Gujarati	Kaithi	Kaithi
a	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	na	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
i	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		ta		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
u	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		tha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
e	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		da	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
o	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		dha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
a		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		na	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ka	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	pa	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
kha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	pha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ga	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ba	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
gha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	bha		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
na		[illegible]	[illegible]		[illegible]	[illegible]	ma	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ca	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ya	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]
cha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ra	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ga	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	la	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
gha		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	va	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
na	[illegible]	[illegible]	[illegible]			[illegible]	sa	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]
ta		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	sa	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]
tha		[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	sa	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
da	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
dha	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]							

प्रोटो बांग्ला समूह के लिपियों का तुलनात्मक अध्ययन

Nagari Kayathi Mahhajani Banlauti Nagari Kayathi Mahhajani Banlauti

हिन्दी लिखने की अलग-अलग लिपियों में साथ कैथी का तुलनात्मक अध्ययन, स्रोत-अंशुमान पांडे

नागरी	कैथी	गुजराती	मोडी	बांग्ला	उड़िया
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

नागरी	कैथी	गुजराती	मोडी	बांग्ला	उड़िया
क	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ख	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ग	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
घ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ङ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
च	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
छ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ज	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
झ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ञ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ट	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ठ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ड	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ढ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ण	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
त	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
थ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
द	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ध	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
न	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

नागरी	कैथी	गुजराती	मोडी	बांग्ला	उड़िया
प	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
फ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ब	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
भ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
म	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
य	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
र	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ल	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
व	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
श	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ष	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
स	[illegible]		[illegible]	[illegible]	[illegible]
ह	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ड़	[illegible]		[illegible]	[illegible]	[illegible]
ढ़	[illegible]		[illegible]	[illegible]	[illegible]
ळ		[illegible]	[illegible]		[illegible]
क्ष	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
ज्ञ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
				[illegible]	[illegible]

उत्तर भारतीय अन्य लिपियों के साथ कैथी का अध्ययन

संदर्भ संकेत :

1. प्रोपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रिप्ट, अंशुमान पांडेय सभी चित्र

शेरशाह सुरी और कैथी लिपि

प्रसिद्ध किताब तारिख-ए-शेरशाही में शेरशाह की शासन व्यवस्था के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है । इसमें लिखा है कि बादशाह शेरशाह ने रैयत से राजस्व वसूलने का नियम भी बनाया और इस कार्य के लिए उसने लोगों की नियुक्ति की । प्रत्येक परगना (राजस्व इकाई) में एक सिकदार (पदाधिकारी का एक पद जिसका मुख्य काम किसी खास भू क्षेत्र से राजस्व वसूलना होता था), एक अमीन (राजस्व अधिकारी जो राजस्व वसूली के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होते थे), एक फोतदार (खजांची या पैसा रखनेवाला), एक कारकुम (किरानी, लिखनेवाला) जो देसी भाषा और लिपि में लिखता हो और एक कारकुम जो फारसी में लिखता हो । प्रत्येक परगना में एक कानूनगो का पद भी होता था जिसका मुख्य काम उस खास भू क्षेत्र का इतिहास, वर्तमान और भविष्य की योजना के बारे में लिखना होता था।[1]

इसी किताब के अनुसार एक परगना में एक सिकदार, एक अमीन, एक फोतदार और दो कारकुन (एक हिन्दी नवीस और दूसरे फारबी नवीस) होते थे । हिन्दी नवीस के रूप में कारकुन (किरानी) की नियुक्ति शेरशाह सुरी की प्रशासनिक नवीनता थी । इस तरह की व्यवस्था, इस तरह के पद और इस तरह की सोच शेरशाह के पूर्व के किसी शासक की नहीं थी । सर्वविदित है कि शेरशाह के शासनकाल में उनके रैयत और जोतदार अधिकतर

हिन्दू थे और उन्हें फारसी का या तो बिलकुल ज्ञान नहीं था, अथवा कम ज्ञान था। शेरशाह की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वह अन्य राजाओं से अलग अपने रैयतों के हितों के लिए हमेशा चिन्तित रहता था और उसके कल्याण के बारे में कार्य करने को उत्सुक रहता था। उसकी इसी सोच ने उसे प्रेरित किया कि वह अपने रैयतों के समक्ष सभी प्रकार के लेन-देन, राजस्व वसूली के हिसाब-किताब को अधिक पारदर्शी बनाए, उसने हिन्दू रैयतों को आसानी से समझ में आने के लिए हिन्दी नवीस कारकुन की नियुक्ति की और प्रत्येक परगना में ऐसी नियुक्ति के लिए पदसृजित किए गए। निश्चित रूप से शेरशाह द्वारा उठाए गए इस कदम का सीधा लाभ हिन्दू रैयतों को मिला जिन्हें अपने राजस्व, लगान आदि के हिसाब-किताब मिलाने और राजस्व कर्मचारियों को संतुष्ट करने तक में कई प्रकार की उलझनें होती थी। शेरशाह ने ऐसी व्यवस्था कर हिन्दू रैयतों का दिल जीत लिया था। वे राजा की इस व्यवस्था से पूर्ण संतुष्ट थे और उन्हें इसका एहसास हो गया कि राजा उनकी भलाई के बारे में सिर्फ बातें नहीं करता, काम भी करता है। ऐसी व्यवस्था के बारे में शेरशाह से पूर्व के किसी राजा ने आज तक सोचा भी नहीं था। प्रत्येक परगना में एक पद कानूनगो का होता था जो पूरे परगना के पटवारी का प्रमुख होता था। पटवारी या कारकुन अपने दस्तावेज कैथी लिपि में लिखा करते थे। पटवारी एवं कानूनगो का पद किसी न किसी स्वरूप में आज भी भारत के कई राज्यों में विद्यमान है। जो हिन्दी नवीस पटवारी थे, वे अपने सारे दस्तावेज कैथी में तैयार करते थे और ऐसा करने में उन्हें कोई रुकावट नहीं थी। कैथी में तैयार दस्तावेजों से राजा को सीधे तौर पर कोई मतलब नहीं होता था क्योंकि राज प्रासाद में तो फारसी में तैयार दस्तावेज सुपुर्द किए जाते थे। कैथी में तैयार दस्तावेजों से सीधे तौर पर हिन्दू रैयतों को ही मतलब होता था। यहीं से चलकर पटवारी के दस्तावेज लेखन में एक प्रकार से स्वतंत्रता आती चली गयी। प्रत्येक परगना में मुंसिफ-ए-खजाना का पद भी होता था। कहा जाता है कि मुंसिफ-ए-खजाना के पद पर कायस्थ जाति के लोगों को बहुतायत में पदस्थापित किया गया था क्योंकि पटवारी वर्ग में भी अधिकतर कायस्थ जाति के लोग ही होते थे। कालान्तर में मुंसिफ-ए-खजाना का प्रचलित रूप 'मुंसी' हो गया। हालांकि प्रामाणिक दस्तावेजों में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।[2]

प्रसिद्ध किताब शेरशाह सुर एण्ड हिज डायनास्टी में वर्णित है कि शेरशाह की यह प्रशासनिक नीति थी कि जनता के बीच से ही प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाए और खासकर ऐसे पदों पर उन्हीं में से अधिकारियों की तैनाती की जाए जिसका सीधा सम्बन्ध

जनता से हो । इसलिए वे राजस्व वसूली से संबंधित पदों पर हिन्दू जाति के लोगों को ही पदस्थापित करते थे और राजमहल तक जिन दस्तावेजों को भेजा जाता था, वे चूँकि फारसी में लिखे जाते थे, अतः फारसी जाननेवाले लोगों को भी पदस्थापित किया जाता था।[1]

विद्वान लेखक हुसैन खान ने अपनी किताब शेरशाह सुरी में वर्णन किया है कि प्रांतीय शासन की सबसे छोटी इकाई मौजा कहलाती थी और इसका प्रशासनिक पदाधिकारी 'मुकद्दम' या मुखिया कहलाता था[2] प्रत्येक मौजा में एक पटवारी हुआ करता था जिसका मुख्य काम राजस्व वसूली था । पटवारी के तीन मुख्य काम थे – जमीन का मालिकाना अधिकार संबंधी विवरण लिखना, जमीन की चौहद्दी के बारे में लिखना और जमीन का कर कितना होगा, इसका विवरण अपनी डायरी में लिखना। इसी किताब में लिखा गया है कि प्रत्येक मुखिया को अपने मौजा में दो ऐसे लोगों की नियुक्ति करना आवश्यक होता था एक जो हिन्दी जानते हों और दूसरे जो फारसी जानते हों । इसके बाद उस मौजा के बाशिंदों से राजस्व वसूली सुनिश्चित करना होता था ।[3]



दिसम्बर 19, 1540 (949 A.H.) को जारी शेरशाह सूरी का सनद (स्रोत जलालुद्दीन, 1978)
इसमें ऊपर के भाग में फारसी तथा नीचे के भाग में कैथी में वर्णित है-स्रोत A.P.

कारकुम में हिन्दी नबीस की नियुक्ति शेरशाह के राज की ही परिकल्पना थी । शेरशाह से पूर्व के शासकों के राजकाज में यह कल्पना नहीं की गई थी कि स्थानीय जनता द्वारा लिखी-पढ़ी जानेवाली लिपि में भी जमीन एवं राजस्व से संबंधित दस्तावेज तैयार करना वांछित है । शेरशाह के शासन की एक बहुत बड़ी खुबसूरती के संदर्भ में यह इतिहासकारों द्वारा अंकित किया गया है । शेरशाह ने रैयतों के हितों का सबसे अधिक ध्यान रखा और यह उनके प्राथमिक दायित्वों में सम्मिलित था । उस समय अधिकतर रैयत हिन्दू थे । हिन्दू ही किसान भी थे और अधिकतर 'जोतों' के अधिकारी भी । हिन्दू रैयत फारसी लिपि नहीं जानते थे । अतएव शेरशाह ने ऐसी व्यवस्था बनाई ताकि राजकाज का दस्तावेज फारसी में हो और रैयतों का दस्तावेज हिन्दी में तैयार हो । हिन्दी नबीस रैयतों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार की गई । शेरशाह के हिन्दी नबीस का पद सृजन करने का व्यापक असर समाज पर पड़ना स्वाभाविक था क्योंकि इससे यह संदेश आसानी से गया कि शेरशाह (शासक) अपने रैयतों के हितों की रक्षा करने के लिए तत्पर एवं कटिबद्ध है । इससे पूर्व मुगलकालीन किसी भी राजा की ऐसी सोच नहीं हुई थी और ऐसी व्यवस्था कर शेरशाह अपने पूर्ववर्ती राजाओं से राजनय के क्षेत्र में बहुत आगे तक सोच रखनेवाले राजा के रूप में इतिहास में स्थापित हो गया । ऐसा मुसलमान राजा जो हिन्दू रैयतों के हित के लिए चिन्तित हो और अपने दस्तावेज हिन्दी नवीस कारकुम से तैयार करवा सके ।

ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व कैथी को राजकीय लिपि का दर्जा मिल चुका था । शेरशाह सुरी ने यह आदेश दिया था कि उनके राज्यादेश, घोषणापत्र (सनद-फरमान) फारसी एवं कैथी दोनों लिपि में प्रकाशित हो । कैथी को यह दर्जा इसलिए मिला चूंकि कैथी आम जनता की लिपि थी।

राजकीय घोषणापत्र – दिसम्बर 1540 में शेरशाह सुरी द्वारा जमीन से संबंधित दानपत्र में फारसी के साथ-साथ कैथी का प्रयोग किया गया है । सनद की भाषा फारसी है और इसका साधारण अनुवाद कैथी लिपि में किया गया है । हालांकि ऐसे फरमानों की संख्या काफी कम है । शेरशार सुरी से लेकर दिल्ली सल्तनत एवं मुगलकालीन भारत की अवधि में अधिकतर फरमान या सनद फारसी भाषा एवं परसो-अरबी लिपि में ही मिलते हैं । शेरशाह सुरी से संबंधित आदेश इस सत्य को प्रमाणित करता है कि कैथी शेरशाह सुरी की राजलिपि में सम्मिलित थी और इसे शासन एवं न्यायालय लिपि का दर्जा प्राप्त हो चुका था।[6]

संदर्भ संकेत :

1. तारीख ए शेरशाही, पृष्ठ – 755
2. तारीख ए शेरशाही, पृष्ठ – 307
3. शेरशाह सुर एण्ड हिज डायनेस्टी – पृष्ठ-145
4. शेरशाह सुरी, हुसैन खान, पृष्ठ 304
5. शेरशाह सुरी, पृष्ठ – 305
6. प्रोपोजल टू इनकोड दि कैथी स्क्रिप्ट इन आईएसओ/आईईसी 10646,पृष्ठ 76

अंग्रेजी शासन में कैथी का विकास

कैथी का मानकीकरण और विकास - वर्ष 1884 के शिक्षा कमीशन के प्रतिवेदन के अनुसार फारसी लिपि को समाज के उच्च वर्ग के लोग जिनमें मुसलमान और पढ़े-लिखे हिन्दुओं की संख्या अधिक थी, पसंद करते थे। परन्तु कैथी लिपि को पढ़ने-पढ़ाने एवं सामान्य चीजों के लिए आम जनता द्वारा प्रत्येक गांव में उपयोग किया जाता था। कैथी की लोकप्रियता, सर्वव्यापकता ने बंगाल प्रेसिडेंसी के तत्कालीन अंग्रेज शासकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। वर्ष 1880 में बंगाल के तत्कालीन लेफिटनेंट गवर्नर सर ऐशले एडेन द्वारा निकाले गए निर्देश के बाद कैथी बिहार के सरकारी कार्यों की लिपि बन गई। ऐशले ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार कैथी लिपि का ही उपयोग बिहार के न्यायालय में होना आरंभ हुआ। चूंकि कैथी लिपि बिहार की जनता के लिए सुगम एवं सर्वप्रिय थी अतएव फारसी के स्थान पर कैथी को ही सरकारी एवं न्यायालय की लिपि बनायी जाए, यह उद्देश्य ऐशले का था। स्थानीय लिपि में सरकारी और न्यायालय के कामकाज तक जनता की अधिक पहुंच हो सके, यही मुख्य कारण था। जनवरी, 1881 तक फारसी का उपयोग लगभग बन्द हो गया और उसका स्थान कैथी या देवनागरी लिपि ने ले लिया।[1]

ऐसा नहीं है कि कैथी को राजकीय लिपि एवं न्यायालय में इस लिपि की मान्यता ब्रिटिश शासनकाल में ही दी गई। ब्रिटिश शासनकाल के पूर्व कैथी को राजकीय लिपि का दर्जा मिल चुका था। शेरशाह सुरी ने यह आदेश दिया था कि उनके राज्यादेश, घोषणापत्र (सनद-फरमान)

फारसी एवं कैथी दोनों लिपि में प्रकाशित हो । कैथी को यह दर्जा इसलिए मिला चूंकि कैथी आम जनता की लिपि थी । वर्ष 1875 में अवध के जन शिक्षा विभाग के निदेशक श्री जे. सी.नेसफिल्ड महोदय ने शासन और शिक्षा में व्यापक प्रयोग की संभावना को स्वीकृति दी और उन्होंने कैथी के मानकीकरण का भी आदेश दिया । जनवरी, 1881 के बाद से सरकारी एवं आर.एल. टर्नर ने ग्रियर्सन के कार्यों की व्याख्या करते हुए लिखा कि इन्होंने अपने कार्यों से एक विशाल संग्रहालय तैयार कर दिया जिसमें भारत के सभी भाषाओं का विज्ञानवत् अध्ययन हो सका । बिहार में ग्रियर्सन ने अपना ध्यान भाषा, बोली, समाज एवं किसानों की सामाजिक आर्थिक स्थिति, मुहावरे एवं लोकोक्ति, लोकगाथा आदि के अध्ययनों पर दिया। वर्ष 1885 में 'बिहार का ग्राम्य जीवन' ग्रियर्सन द्वारा तैयार उत्कृष्ट किताबों में से एक है । उन्होंने गया जिला पर नोट्स लिखे जिसके माध्यम से तत्कालीन समाज एवं किसानों के संबंध में महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है।[2]

ग्रियर्सन मधुबनी में एस.डी.ओ. के पद पर नियुक्त किए गए परन्तु तिथि के संबंध में मतभेद है । प्रसिद्ध विद्वान श्री हेतुकर झा के अनुसार ग्रियर्सन वर्ष 1873 में एस.डी.ओ.बनकर मधुबनी आए । इनके अनुसार ग्रियर्सन निश्चित रूप से कम से कम तीन साल तक इस पद पर रहते और तद्नुसार वर्ष 1876-77 तक ये यहां रहते । परन्तु पूर्व एस.डी.ओ. के पदकाल का जैसा कि एस.डी.ओ. कार्यालय के नामपृष्ठ पर किया गया है, ग्रियर्सन वर्ष 1880 तक यहां रहे । इस प्रकार इनके पदकाल की निश्चित तिथि का संधारण किया जाना बाकी है। इनके सेवाकाल में ही मधुबनी में एक बाजार का निर्माण हुआ जिसका नाम ग्रियर्सन चौक पड़ा जो अद्यावधि 'गिलेसन' चौक के नाम से विख्यात है । ग्रियर्सन के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे 'साहब' की तरह अपना जीवन नहीं गुजारते थे । जनता के बीच रहना उन्हें काफी पसंद था और यही कारण है कि उनके अध्ययन एवं रचना में स्थानीय चीजों का समावेश सबसे अधिक मिलता है । इतना ही नहीं, जनता के बीच की चीजों को उन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के चीजों के रूप में स्थापित किया । जार्ज ग्रियर्सन अपने संपूर्ण जीवन काल में भाषा और क्षेत्रीय बोली पर कार्य करते रहे ।

डॉ0 ग्रियर्सन का साहित्येतिहास

लेखिका डा0 आशा गुप्ता, अपनी किताब डॉ0 ग्रियर्सन का साहित्येतिहास में वर्णन किया है कि वर्ष 1881 का समय भारतीयों पर अंग्रेजी भाषा सीखने की अनिवार्यता की दृष्टि से भी स्मरणीय है ।[1] सर ऐंशले ऍडन के समय में पटना डिविजन में कचहरियों में फारसी लिपि का बहिष्कार करके केवल नागरी या कैथी लिपि का उपयोग चालू हुआ था । सर चार्ल्स

इलियट शासन काल तक कचहरी और अन्य सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी का उपयोग भी आवश्यक कर दिया गया था । सब क्लर्कों एवं सरकारी मातहतों को शासक वर्ग द्वारा यह चेतावनी भी मिली थी कि यदि वे निश्चित अवधि तक अंग्रेजी वर्णमाला का कार्योपयोगी ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेंगे, उनकी नौकरी एवं उन्नति खतरे में रहेगी ।

4 दिसम्बर, 1877 को मधुबनी सब डिविजन के अधिकारी होकर ग्रियर्सन आए संयुक्त मैजिस्ट्रेट एवं कलक्टर दोनों पदों के देखभाल करने के लिए दरभंगा बुलाया गया । 1878 को उन्हें प्रथम श्रेणी पर पदोन्नत कर दिया गया। वे बीच-बीच में कभी संयुक्त मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलक्टर प्रथम श्रेणी और कभी द्वितीय श्रेणी पद पर दरभंगा जिला एवं मधुबनी सबडिविजन में रहे । मधुबनी सब डिविजन के तीन वर्ष ग्रियर्सन के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुए । अत: 13 जुलाई, 1880 को तीन मास के प्राधिकृत अवकाश पर वे वापिस घर (डबलिन) चले गए और 14 अक्टूबर, 1880 ई० को विवाहोपरान्त भारत लौटे।

इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स : - 1880 से ग्रियर्सन बिहार सर्किल के कार्यभारी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स बना दिए गए, कारण कि उन दिनों बंगाल शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स श्री भूदेव मुखर्जी तीन महीने की छुट्टी पर थे । ग्रियर्सन को माध्यमिक शिक्षा स्कूलों की देखभाल का कार्य सौंपा गया था। 1881 में उन्हें कैथी अक्षर ढालने का काम मिला कारण यह कि लेफिटनेंट गवर्नर सर ऍशले ऍडन बिहार की कचहरियों से फारसी लिपि का परित्याग करके कैथी अथवा नागरी अक्षरों का उपयोग करने के आकांक्षी थे । इधर ग्रियर्सन मधुबनी में रहकर व्यक्तिगत स्तर पर कैथी लिपि संबंधी सामग्री एकत्र कर चुके थे । इसके प्रकाशन द्वारा वे सरकारी तथा सार्वजनिक स्तर पर सिद्ध करना चाहते थे कि 'बिहारी भाषा' के लिए फारसी का नहीं अपितु देवनागरी या कैथी लिपि का उपयोग अपेक्षित है । बीमारी के कारण पुस्तिका के प्रकाशन का कार्य स्थगित हो गया । कारण स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं 'कार्य इस प्रकार का था कि जब तक प्रूफ वहीं शुद्ध न किए जाते उनमें पूर्ण शुद्धि आना असंभव था और इसके बिना कार्य ही सर्वथा निरर्थक हो जाता। ग्रियर्सन ने यह हस्त पुस्तिका भारत लौटकर बाँकीपुर आने के उपरान्त छपवाई थी । उन्होंने कार्यभार ग्रहण करके 25 जनवरी, 1881 को कैथी अक्षर ढलवाए तथा कार्यपूर्ति पर एक रिपोर्ट भी भेजी जो सरकारी प्रस्तावना सहित 'कलकत्ता गजट' में प्रकाशित हुई । इसी वर्ष ग्रियर्सन ने भारत सरकार से इस हस्त पुस्तिका को मान्यता देने का अनुरोध किया । परीक्षकों के बोर्ड-सेक्रेटरी ने उक्त पुस्तिका के संबंध में प्रशंसापरक सम्मति भारत सरकार कों भेजी ।

कैथी लिपि के साथ अंग्रेज पदाधिकारी ग्रियर्सन का लगाव बहुत पुराना था । ग्रियर्सन ने ही

कैथी लिपि में धातु के फौंट का विकास किया। यह फौंट मैथिली, मगही और मैथिली कैथी, अर्थात् कैथी के तीनों स्वरूपों के लिए किया गया । इसका वर्णन ग्रियर्सन द्वारा भारत का भाषा सर्वेक्षण के पांचवे भाग नामक विशद ग्रंथ में किया गया है ।

कैथी की मान्यता जब बिहार के न्यायालयों में हो गई, इसके बाद अंग्रेज हाकिमों के लिए, खासकर जिनका संबंध न्यायालयों के कार्यों से था, उनके लिए कैथी लिपि सीखना एक प्रकार से अनिवार्य जैसा हो गया । वर्ष 1881 में गियर्सन ने ए हैण्डबूक ऑफ कैथी कैरेक्टर नामक पुस्तक की रचना की । आज की तिथि में भी ग्रियर्सन द्वारा कैथी के उन्नयन् की दिशा में किए गए कार्य महत्वपूर्ण साबित हो रहे हैं ।

संदर्भ :

1. क्रिस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्विज टू स्क्रिप्टस
प्रकाशक-ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई, 1994
2. डा. हेतुकर झा, भूतपूर्व प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह कल्याणी फाउंडेशन, दरभंगा (प्रस्तावना)
3. डा. आशा गुप्ता, डॉ. ग्रियर्सन का साहित्येतिहास

कैथी का प्रयोग

कैथी का प्रयोग ठीक प्रकार से समझने के लिए हमें यह मूल्यांकन करना होगा कि कैथी का प्रयोग किन-किन चीजों के लिए होता था। यह सर्वविदित है कि मानकीकरण एवं प्रिंटिंग की व्यवस्था होने के बाद कैथी की लोकप्रियता में लगातार वृद्धि होती चली गयी। कैथी का उपयोग इसके पूर्व सामान्य प्रशासनिक कार्यों के लिए, संस्कृत पाण्डुलिपियों में से टिप्पणी लेखन के लिए, निजी पत्राचार एवं छिटपुट लेखन, दस्तावेज के लिए एवं ईसाई मिशनरी द्वारा धर्मांतरण कार्यों को बढ़ावा देने हेतु कागजातों के प्रकाशन के लिए होता था। इन चीजों का संक्षेप में निम्न रूप से वर्णन किया जा रहा है :

कैथी में टाईपफेस का विकास – तत्कालीन सरकार द्वारा कैथी को मिल रही लगातार प्रोत्साहन एवं समर्थन से कैथी लिपि में टाईपफेस का विकास किया गया। हालाँकि आरंभिक दिनों में यह हाथ से लिखी जाने वाली लिपि ही थी। नेशफिल्ड महोदय द्वारा दिए गए आदेश के बाद ही टाईपफेस का विकास आरंभ हुआ। नेशफिल्ड महोदय ने ही कैथी लिपि में प्रिंटिंग हेतु धातु से निर्मित प्रथम फॉट विकसित किया जिसका आधार एक समुन्नत और मानकीकृत कैथी लिपि को बनाया गया। इस फॉट का उपयोग उत्तर पश्चिम एवं अवध राज्यों के लिए प्रारंभिक शिक्षा की प्रथम पोथी को छापने हेतु वर्ष 1880 में हुआ। बिहार सरकार ने भी सरकारी स्वीकृति मिलने के बाद वर्ष 1880 में इस फौंट को स्वीकृत एवं कार्यान्वित किया। राज्य स्तर पर मिल रही स्वीकृति एवं प्रिंटिंग के विकास से संबंधित हो रहे कार्यों को देखते हुए निजी प्रकाशकों ने भी इसमें रूचि लेना आरंभ किया। बांकीपुर (पटना) में अवस्थित खड्गविलास प्रेस के निदेशक रामदीन सिन्हा ग्रियर्सन महोदय के सम्मुख कैथी टाईप के संबंध

में प्रस्ताव दिया । ग्रियर्सन महोदय ने ही कलकत्ता में कैथी टाईप का फॉट ढलवाने का कार्य समाप्त किया था । इस कार्य के लिए इन्हें सरकार का आदेश एवं सहायता मिली थी ।

न्यायालय से संबंधित दस्तावेज - कैथी में लिखित एवं न्यायालय में समर्पित कागजातों की संख्या बहुत अधिक है । बिहार का उस समय का शायद ही कोई निबंधन कार्यालय अथवा न्यायालय हो जहां बहुत अधिक मात्रा में कैथी में लिखित कागजात उपलब्ध न हों । श्री एस.के.दास द्वारा.वर्ष 1939 में लिखित पुस्तक 'सेलेक्शन ऑफ हिन्दुस्तानी डॉक्युमेंट्स फ्रॉम दी कोर्ट्स ऑफ बिहार' जिसे बिहार हाईकोर्ट ऑफ ज्युडिकेचर द्वारा प्रकाशित किया गया है, विस्तार से वर्णित है ।

पुस्तकों का प्रकाशन - वर्ष 1875 में कैथी लिपि का मानकीकरण होने के बाद कैथी में किताबों का प्रकाशन आसान हो गया और प्रकाशन आरंभ भी हो गया । पटना के खड्‌गविलास प्रेस एवं लखनऊ के मुंशी नवल किशोर प्रेस द्वारा कैथी में पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ हो गया । वर्ष 1886 में साहिब प्रसाद सिन्हा द्वारा बांकीपुर (पटना) के खड्‌गविलास प्रेस द्वारा कैथी लिपि में हिन्दी व्याकरण और प्राथमिक विद्यालय रीडर का प्रकाशन हुआ। कैथी लिपि को राजकीय लिपि का दरजा प्राप्त होने के बाद खड्‌गविलास प्रेस निजी क्षेत्र की प्रथम प्रेस थी जिसने कैथी टाईप एवं फॉट प्रयोग करने का आदेश प्राप्त किया और इस प्रेस से कैथी में कागजात एवं किताबों का प्रकाशन आरंभ हो गया । खड्‌गविलास प्रेस द्वारा सरकार के लिए भी प्रकाशन का कार्य आरंभ किया गया । सरकार के दस्तावेजों में सामान्य प्रशासनिक कागजात थे एवं कृषि से संबंधित कागजात भी होते थे । अवध में उर्दू किताबों के मुख्य प्रकाशक के रूप में चर्चित लखनऊ के मुंशी नवल किशोर प्रेस में कई तरह के कैथी लिपि में किताबें छपीं जिनमें प्राथमिक शिक्षा एवं पेशा से संबंधित किताबें भी थी । हालांकि कैथी लिपि का विकास खूब जोर से हुआ, इसे राजकीय संरक्षण मिला, टाईप एवं फौंट का विकास भी हुआ, परन्तु यह देवनागरी लिपि की तेज के सामने मंद ही दिखी । कैथी की अवस्था पर विचार करते हुए केलॉग ने वर्ष 1893 में लिखा कि हालांकि कैथी में पुस्तकें प्रकाशित हो रही है परन्तु देवनागरी में तैयार हो रही पुस्तकों की तुलना में इसकी संख्या कम ही है। उच्च विद्यालयों की पढ़ाई के लिए देवनागरी लिपि चयन करना एक विशेष कारण थे और होर्नले महाशय ने केलॉग की बातों को एक तरह से संपुष्ट करते हुए लिखा कि कैथी के बारे में पूरी तरह से चिंतन मनन नहीं किया गया है । ालांकि प्राथमिक कक्षा के लिए पुस्तकें कैथी में प्रकाशित हो रही है परन्तु चूंकि उच्च विद्यालयों में देवनागरी है अतएव देवनागरी में छपनेवाली किताबों की संख्या स्वभावत: अधिक होगी । हालांकि कई प्रकार के धार्मिक किताब एवं सामान्य किताब कैथी में छप रहे हैं, परन्तु देवनागरी में तैयार होनेवाले किताबों की गुणवत्ता अधिक है और इसकी मात्रा भी अधिक है । अतएव स्वाभाविक रूप से यह कैथी से आगे निकल जाएगी । हालांकि विद्वानों का मत है कि कम मात्रा में कैथी फौंट का विकास इसके मार्ग को अवरूद्ध करने का सबसे बड़ा कारण बना ।

शिक्षा : वर्ष 1881 में सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में पढ़ाई जानेवाली किताबें कैथी लिपि में छपेंगी । बिहार की स्थिति बिलकुल अलग थी । नागरी का प्रचार यहां बहुत ही कम था और प्राथमिक शिक्षा में लोग इसे सीखना नहीं चाहते थे । इनके लिए देवनागरी सीखना एक प्रकार से अनर्थक था । लोग इसे उबाऊ एवं पांडित्यपूर्ण मानते थे और ऐसा विचार भी प्रकट किया जाता था कि यह रईसों के बच्चों के सीखने की लिपि है । प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों की किताबें जब कैथी में छपने लगी तो 'लेखक' परीक्षा पास करनेवालों को आसान पाठ्यक्रम बनाने के लिए भी प्रयत्न आरंभ होने लगे । तत्कालीन बिहार सरकार की शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदनों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय की शिक्षा के लिए कैथी बहुत लोकप्रिय लिपि थी। बिहार सरकार द्वारा ग्रामीण शिक्षा का पर्यवेक्षण अपने हाथ में ले लिया गया था । शासन के अधिकारियों को लगातार ऐसे प्रतिवेदन एवं आंकड़े मिल रहे थे कि ग्रामीण क्षेत्रों में कैथी लिपि ही सर्वप्रिय है और छात्रों एवं शिक्षकों के पठन-पाठन हेतु यह काफी सुगम भी है । बिहार सरकार के समक्ष प्राथमिक शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार एवं इसे गांव-गांव, जन-जन तक पहुंचाना एक चुनौती के समान थी और यह चुनौती तभी पूरा की जा सकती थी जब सरकार कोई ऐसी लिपि का चयन करे जिसे जानने-समझने वाले कम से कम कुछ व्यक्ति प्रत्येक गांव में हो । निश्चित रूप से कैथी इस मानक पर खरा उतरती थी । दूसरे शब्दों में इसे यों कहा जा सकता है कि सरकार के समक्ष कैथी के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प दूर-दूर तक मौजूद नहीं था ।

बिहार में कैथी को प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में शिक्षा देने की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया, वहीं उत्तर पश्चिमी प्रांत एवं अवध राज्य द्वारा इससे विपरीत नीति लागू की गई वर्ष 1854 में प्रकाशित देशी स्कूल एवं शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन में कहा गया कि कैथी लिपि में जहां 77368 किताबें प्रकाशित की गई वहीं देवनागरी में प्रकाशित किताबों की संख्या 25151 थी और यह पूरे राज्य का आंकड़ा था। हालांकि कैथी लिपि पढ़नेवाले बच्चों की संख्या, प्रकाशित किताबों की संख्या एवं जाननेवाले शिक्षकों की संख्या देवनागरी से बहुत अधिक थी, फिर भी सरकार ने कैथी के बदले देवनागरी को समर्थन एवं प्रश्रय दिया एवं इससे संबंधित नीति भी सरकार द्वारा बनाई गई । राज्य में भोजपुरी एवं अवधी भाषा काफी लोकप्रिय थी, फिर भी इन भाषाओं को दरकिनार कर हिन्दी को प्रश्रय एवं समर्थन सरकार द्वारा दिया गया और कैथी के बदले देवनागरी को प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय की शिक्षा लिपि के रूप में मान्यता दी गई । वर्ष 1913 तक इन विद्यालयों में शिक्षा लिपि कैथी ही रही ।

कैथी लिपि में हस्तक एवं लिपि की आरंभिक शिक्षा संबंधी किताबें - राजकीय लिपि का दर्जा मिलने के बाद अंग्रेज हाकिमों एवं सरकारी अधिकारियों-कर्मचारियों को कैथी लिपि

सीखना एक प्रकार से अनिवार्य बन गया । इन वर्ग के लोगों को आसानी से कैथी सीखने के लिए आरंभिक किताबों का प्रकाशन किया गया । प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों के ऐसे शिक्षक जो अब तक कैथी लिपि से अनभिज्ञ थे उनके लिए भी ऐसी ही पुस्तकें तैयार की गयी । इनमें से कुछ का विवरण निम्न है :

(क) कैथी पत्रमाला (वर्ष 1880) लेखक -अम्बिका प्रसाद - यह किताब सैयद अहमद हुसैन द्वारा रचित किताब मकतब-ए-अहमदी का कैथी अनुवाद था । इसका प्रकाशन लखनऊ के मुंशी नवल किशोर प्रेस में हुआ । 76 पृष्ठों की इस किताब में मुख्य रूप से कैथी में पत्र लेखन की विधा के संबंध में विस्तार से वर्णन है । इस किताब का पहला प्रकाशन वर्ष 1880 में हुआ और वर्ष 1889 आते-आते इसके 10 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे । ऐसी दूसरी किताब हिन्दी में कैथी लिपि थी । इन दोनों किताबों का मुख्य उद्देश्य सभी प्रकार के पत्र लेखन, सरकारी पत्र लेखन एवं शासन से संबंधित दस्तावेज तैयार करना था ।

(ख) ए कैथी हैंडबुक (वर्ष 1881) - लेखक जॉर्ज ग्रियर्सन -कलकत्ता - इस किताब का प्रथम मुद्रण वर्ष 1881 में हुआ परन्तु किताब की लोकप्रियता को देखते हुए द्वितीय संशोधित संस्करण वर्ष 1899 में कलकत्ता के ही थाकर स्पिंक एण्ड कं. द्वारा 'ए हैंडबुक टू दी कैथी कैरेक्टर' के नाम से 61 पृष्ठ का प्रकाशन हुआ । इस पुस्तक में 30 ऐसे पृष्ठ दिए गए जो चित्र आधारित थे और इसमें कैथी लिपि लिखने के अलग-अलग तरीकों के बारे में विस्तार से जानकारी दी गयी थी । इन पृष्ठों के अधिकतर व्याख्या अनुवाद के स्वरूप में थी ।

(ग) कैथी वर्णमाला (वर्ष -1877) लेखक -हनुमान प्रसाद - यह किताब कैथी सीखने के प्रयोजनार्थ थी और इसके मात्र 4 पृष्ठ थे ।

(घ) कैथी ओ हिन्दी वर्णमाला (वर्ष 1882), छपरा, बिहार - कैथी एवं हिन्दी सीखने की यह किताब वर्ष 1882 में नसीम शरण प्रेस द्वारा प्रकाशित हुई थी । 16 पृष्ठों की यह किताब कैथी एवं देवनागारी, दोनों लिपियों में लिखी हुई थी और इस किताब की सहायता से कैथी एवं हिन्दी सीखी जा सकती थी ।

(ङ) पत्र हितैषिणी (वर्ष 1870) लेखक -शिव नारायण - पत्र हितैषिणी अर्थात् कैथी अक्षरों में चिट्ठी पत्री लिखने की रीति सीखनेवाली पुस्तिका । यह किताब मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ में छपी थी । इस पुस्तक में पत्र, आवेदन पत्र आदि अच्छे ढंग से लिखने के तरीकों का वर्णन किया गया था । यह किताब पेशेवर ढंग से आवेदन, कागजात तैयार करनेवालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया था । इस पुस्तक का अनुवाद पंडित शिवनारायण द्वारा पहले हिन्दुस्तानी (उर्दू) भाषा की किताब 'मुफीद अल इंसा' से किया गया । यह 44 पृष्ठों की किताब थी ।

(च) जनगणना शिड्युल : कैथी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए अंग्रेज सरकार के हाकिमों ने इस लिपि का उपयोग अन्य तरह के प्रशासकीय कार्यों में करने का निर्णय लिया। इनमें जनगणना प्रचालन एक था । बंगाल के तत्कालीन महानिबंधक हेनरी वेभरली ने निर्णय लिया कि कैथी लिपि का जनगणना संबंधी कार्यों के लिए भी उपयोग किया जाए । इसके लिए यथा विहित फॉर्म भी छपवाए गए । वर्ष 1874 में हेनरी वेभरली द्वारा दिए गए निर्णय का सार था कि जनगणना संबंधी सारे फॉर्म सरकारी प्रेस, कलकत्ता में छपाए जाते थे । इन फॉर्मों को स्थानीय जनता की सुविधा के अनुसार स्थानीय लिपि एवं भाषा में छपाए जाते थे । इसके लिए प्रथमत: बांग्ला में अनुवाद किया जाता है ताकि बंगाल के नागरिकों को सुविधा हो । बिहार के लिए हिन्दुस्तानी भाषा में फारसी और कैथी दोनों अक्षरों में उड़िसा के लिए उड़िया, छोटानागपुर और संतालपरगना के लिए नागरी अक्षर में देवनागारी और दार्जिलिंग एवं आसपास के क्षेत्र के लिए नेपाली में इसका अनुवाद होता था ।

(छ) भूमि संबंधी दस्तावेज एवं भू लगान की रसीद : अंग्रेज सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार भूमि संबंधी दस्तावेज कैथी लिपि में तैयार किए जाने लगे एवं निबंधन के लिए सरकार द्वारा इसकी स्वीकृति भी मिली । भू-लगान की रसीद कैथी में छपाई गई और इसका उपयोग भी किया गया । इस व्यवस्था को लागू कराने का श्रेय भी ग्रियर्सन को जाता है।

22726

कैथी में भू लागत की रसीद, स्रोत-ई० श्री रामचन्द्र दास, ग्राम-बलौर, मनीगाछी (दरभंगा)

महाजनी में अदयावधि प्रचलित वही खाता के अंश-स्रोत श्री अनिल कुमार यादव, अवर सचिव, बिहार विधान परिषद्

(ज) ताजिरात ए हिन्द : अंग्रेजी शासन के पूर्व मुगल शासन में कानून व्यवस्था की संहिता के रूप में यह स्थापित था । अंग्रेजी हुकूमत में इसका नाम एवं स्वरूप बदलकर आई.पी. सी. एवं सी.आर.पी.सी.किया गया । आम जनता इससे भली भाँति परिचित हो, इस कारण कैथी में इसका प्रकाशन किया गया ।

(झ) वाणिज्यिक कारोबार में कैथी -कैथी लिपि का प्रयोग व्यापारिक लेन-देन संबंधी विवरणी लिखने के लिए बहुतायत में होता था । कैथी लिपि में प्राप्ति रसीद दिया जाना सामान्य चीज थी । वाणिज्यिक पेशा से जुड़े लोग अपना कारोबार संबंधित दस्तावेज एवं इसके

आकलन कर गणना आदि से संबंधित कागजात भी कैथी में तैयार करवाते थे और हाकिमों के पास पेश भी करते थे । इसी प्रकार हाकिमों द्वारा व्यापारियों को दिए जानेवाले कागजात भी कैथी में ही प्रिंट करवाए जाते थे ।



कैथी में उपलब्ध जमीन के दस्तावेज, वर्ष-1939,
स्रोत-डॉ० रामचन्द्र दास, ग्राम-बलौर, मनीगाछी (दरभंगा)

कैथी के उपयोग में एकाएक वृद्धि वर्ष 1975 में हुई जब अंग्रेज सरकार द्वारा कैथी लिपि के मानकीकरण का निर्णय लिया गया । साथ ही इसी समय यह भी निर्णय लिया गया कि प्राथमिक शिक्षा में भी कैथी लिपि का ही उपयोग किया जाए । कैथी के उपयोग एवं संपन्नता में दूसरी बार तब वृद्धि हुई जब तत्कालीन बिहार सरकार ने निर्णय लिया कि कैथी को शासकीय लिपि का दर्जा दिया जाए और न्यायालय की लिपि के रूप में भी कैथी को मान्यता दी गयी । यह वर्ष 188J में हुआ । इसके बाद फारसी के स्थान पर कैथी का उपयोग न्यायालय में होना आरंभ हो गया और फारसी का स्थान कैथी ने ले लिया और न्यायालय के दस्तावेज कैथी लिपि में तैयार होने लगे । इतना ही नहीं, कैथी न्यायालय की लिपि बन गई ।

संदर्भ :

1. क्रिस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्विजटू स्क्रिप्टस, प्रकाशक-ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस मुम्बई-1994
2. आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका, डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, वर्ष-2000
3. डॉ. अंशुमान पांडेय, प्रोपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रिप्ट, वर्ष-2007
4. डॉ. गोविन्द झा साक्षात्कार

कैथी, फारसी और देवनागरी

कैथी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द कायस्थ से हुआ है जो उत्तर भारत की एक विशेष जाति है। कायस्थ द्वारा व्यवहृत लिपि का अपभ्रंश कायस्थी एवं इसके बाद कैथी में हो गया।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सन् 1893) – काशी के क्वीन्स कॉलेजिएट स्कूल की पांचवीं कक्षा के कतिपय उत्साही छात्रों ने 'वाद-विवाद-समिति' की स्थापना की दृष्टि से, जिसका एक उद्देश्य नागरी-प्रचार भी था, 10 मार्च, 1893 ई. को 'नागरी-प्रचारिणी सभा' को जन्म दिया। इस सभा की प्रथम बैठक 9 जुलाई, 1893 ई. को तथा दूसरी बैठक 16 जुलाई, 1893 ई. को हुई, जिनमें इसके संबंध में विचार हुआ। 16 जुलाई, 1893 ई. को इस सभा का 'स्थापना दिवस' मनाया गया। इसके संस्थापक श्रीगोपाल प्रसाद माने गए हैं। इसके प्रधानमंत्री श्री श्यामसुन्दर दास चुने गए थे।

इस संस्था का मूलभूत उद्देश्य हिन्दी-भाषा-साहित्य तथा देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार था। यह विशुद्ध साहित्यिक संस्था है। इसने कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा तथा खड़ीबोली हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर कार्य किया है। इसके पास अपना प्रेस नहीं था। फिर भी इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्ता श्री राधाकृष्ण दास के प्रस्ताव पर हिन्दी के पत्र सम्पादकों, ग्रंथकारों और लेखकों के जीवन चरित्र के प्रकाशन की योजना स्वीकृत हुई।[1]

मुस्लिम सल्तनत के पूर्व तक भारत में हिन्दी राज-काज की भाषा थी। सत्ता परिवर्तन के बावजूद कुछ काल तक राजकीय कार्यालयों में माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी बनी रही। हिन्दी की प्रतिष्ठा अकबर के शासन के पच्चीसवें वर्ष तक राजभाषा के रूप में कायम थी। मुस्लिम [illegible]दारी में कचहरी की भाषा फारसी बना दी गई।[2] इस देश की जनता के लिए यद्यपि फारसी नई थी, तथापि कचहरियों में इसी का व्यवहार होने लगा। कहा जाता है कि

अकबर के शासन के छब्बीसवें वर्ष में राजा टोडरमल के कारण हिन्दी का प्रयोग बन्द कर दिया गया और राज-काज की भाषा के रूप में फारसी जनता पर लाद दी गई।

अंगरेजी सत्ता का स्थापन और मुस्लिम सल्तनत का अंत होने पर अंगरेजों को फारसी के माध्यम से राज-काज का काम चलाना रूचिकर नहीं लगा। वे अधिकारियों की कचहरी की माध्यम भाषा के रूप में अंगरेजी चाहने लगे। इसके प्रचलन के लिए कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से निवेदन किया गया। कोर्ट को अधिकारियों का यह सुझाव पसन्द नहीं आया। उसने 29 सितम्बर, 1830 ई. के अपने पत्र में उपर्युक्त सुझाव पर नापसन्दगी प्रकट करते हुए अधिकारियों को सूचित किया।

अधिकारियों के लिए भाषा की समस्या जटिल थी। शासन ने इस विषय पर गंभीरता से विचार किया और महसूस किया कि जनता के व्यवहार की भाषा विदेशी नहीं हो सकती। उसने तय किया कि आपसी पत्राचार की भाषा अंगरेजी और अदालत की क्षेत्रीय होनी चाहिए। इस निर्णय से संयुक्त प्राप्त और बंगाल प्रदेश (बिहार-प्रदेश-सहित) की सरकारों ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अवगत करा दिया।

बंगाल सरकार के सचिव ने राजस्व बोर्ड के सचिव को (पत्र संख्या- 914 दिनांक 30 जून, 1837 ई.) फारसी के स्थान पर अंगरेजी और अदालत भाषा के रूप में फारसी के स्थान पर स्थानीय भाषा का प्रयोग करने का आदेश देते हुए लिखा कि यह बहुत महत्वपूर्ण है कि न्याय की भाषा वही हो जिसकी पूर्ण जानकारी जज को हो। लेकिन यह भी थोड़ा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि न्यायालय की भाषा वही होनी चाहिए जिसे दोनों विवादी पक्ष समझ सके, उनके अधिवक्ता समझ सकें और विशेष रूप से अवाम की आम जनता समझ सके। यह सबसे अच्छी व्यवस्था होगी कि स्थानीय जनता की भाषा को न्यायाधीश सीख लें न कि जज की भाषा को जनता सीखे।[1]

इस आदेश के परिपालन में वैधानिक दिक्कतें थीं। राजस्व विभाग में फारसी का व्यवहार राजकीय नियम के अनुसार हुआ था। इसलिए इस वैधानिकता को समाप्त करने के लिए वायसराय की व्यवस्थापिका सभा में 4 सितम्बर, 1837 ई. को विधेयक रखा गया। विधेयक पारित हो गया और 20 नवम्बर, 1837 ई. को बंगाल और बिहार में कार्यान्वित भी हो गया। उक्त विधान के अनुसार बंगाल और उड़ीसा की अदालतों में क्रमशः बंगला और उड़िया में काम शुरू हो गया। बिहार की भाषा हिन्दुस्तानी (उर्दू) मानी गई। ऐसा अंगरेज विद्वानों के अज्ञान के कारण हुआ। फलतः, बिहार की अदालतों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के बजाय उर्दू-भाषा और फारसी लिपि कायम रखी गई। इससे जनता में रोष बढ़ा। लोगों को अदालत में उर्दू में आवेदन पत्र लिखना पड़ता था। लगभग चालीस वर्षों तक बिहार की कचहरियों में उर्दू का प्रयोग जारी रहा। उर्दू क्या थी, उसके नाम पर फारसी थी। वस्तुतः उपर्युक्त विधान के लागू होने से बिहार के लोगों को लाभ नहीं हुआ। जनता को अपनी अभिव्यक्ति का कोई माध्यम नहीं मिल रहा था। जनता को अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में उन्नीसवीं सदी के पांचवें और छठे दशकों में अखबार सुलभ हुआ। लेकिन, वे सभी

अखबार उर्दू के थे, इस कारण जनता की आवाज अंगरेज सरकार तक नहीं पहुंच सकती थी । विवशत: लोगों को स्थितिवश खामोश रहना पड़ा ।[4]

उन्नीसवीं सदी का सातवां दशक बिहार में नवजागरण का काल है । बिहार के पहले हिन्दी -पत्र 'बिहार बन्धु' का सन् 1872 ई. में कलकत्ता से मुद्रण-प्रकाशन हुआ । सन् 1874 ई. से 'बिहार बन्धु' स्थानान्तरित होकर पटना चला आया । इससे बिहार के हिन्दी भाषी प्रबुद्ध लोगों को पहली बार अपनी विचाराभिव्यक्ति का माध्यम मिला । इस पत्र के प्रवर्तन का लक्ष्य बिहार की अदालतों और विद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठित करना था । इस ध्येय को ध्यान में रखकर 'बिहार-बन्धु' उर्दू का प्रबल विरोध करता था ।[5]

बिहार की कचहरियों में हिन्दी को मान्यता दिलाने, विद्यालयों में हिन्दी का समावेश कराने तथा हिन्दी के स्वतन्त्र प्रचार-प्रसार के लिए जन-आंदोलन शुरू हुआ । इस आंदोलन के नेताओं में गोविन्दचरण, सम्दीन सिंह, 'बिहार बन्धु' के सम्पादक केशवराम भट्ट, अयोध्याप्रसाद खत्री, रामकृष्ण पाण्डेय आदि प्रमुख थे । आंदोलनकारी साहित्यिक नेता और हिन्दी के समर्थक थे । इन लोगों ने 'बिहार बन्धु' के माध्यम से सरकार तथा जनवाणी को उद्वेलित किया । सभाएँ कर प्रस्ताव पारित किए गए । आंदोलन के कारण अंगरेजी सरकार को अपने पूर्ण निर्णय पर फिर सोचना पड़ा ।[6]

आंदोलन काल में आरा के जिलाधिकारी के पेशकार जंगलीलाल की भूमिका अदालतों में हिन्दी की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई । अंगरेजी सरकार की यह धारणा थी कि अंगरेजी में अधिक तत्परता के साथ काम किया जा सकता है और उसके बाद फारसी उपयुक्त है । हिन्दी में काम करना उसकी दृष्टि में व्यवहार संगत नहीं था । तत्कालीन आयुक्त सी.ई.एफ.डब्ल्यू. ओल्डम ने पटना-प्रमण्डल के पटना जिले की कचहरियों में काम करनेवाले लिपिकों की, इस तथ्य की जानकारी के लिए, आलेख- परीक्षा का आयोजन किया । उक्त परीक्षा में 70 फारसीदाँ और इक्कीस रोमन लिपिवाले थे । जंगलीलाल एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में आलेखन परीक्षा परीक्षा देनेवाले थे । श्री ओल्डम ने परीक्षा ली । बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने जंगली प्रसाद को अत्यधिक प्रेरणा दी । इसी का परिणाम था कि उन्होंने द्रुत आलेखन और सुपाठ्य लेखन में देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा को सम्मान बढ़ाया । परीक्षा में वे प्रथम आए । परिणाम स्वरूप यह धारणा निर्मूल हो गई कि हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के माध्यम से अदालत में काम नहीं हो सकता।[7]

हिन्दी आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि 11 सितम्बर, 1875 ई. से जनता को बिहार की कचहरियों में उर्दू के साथ-साथ हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में आवेदन पत्र देने की सुविधा प्राप्त हो गई। कलकत्ता हाईकोर्ट ने 11 सितम्बर, 1875 ई० को अपने परिपत्र संख्या-12 में बिहार प्रदेश की अदालतों को देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में काम करने का आदेश दिया ।

इस आदेश पर कचहरियों में हिन्दी का प्रचलन शुरू हुआ । हिन्दी-आंदोलन के फलस्वरूप सरकार ने 8 अक्टूबर, 1873 ई., 2 अप्रैल, 1874 ई., 20 मई, 1875 ई. और 9 जुलाई,

1875 ई. को देवनागरी लिपि में काम करने के लिए अधिकारियों को आदेश दिए। लेकिन सभी आदेश व्यर्थ सिद्ध हुए। सरकारी कर्मचारी व्यवहारतः नागरी के प्रयोग में शिथिलता बरतते रहे। इससे एक ओर जहां सरकार की मंशा जहां की तहां रह गई, वहीं जनता को व्यवहारिक परेशानी होने लगी। फलतः सरकार जरा कठोरता से पेश आई। बिहार की पुलिस के डी.आई.जी. ने अपनी परिपत्र संख्या- 1209 दिनांक 6 सितम्बर, 1879 ई. और पटना प्रमण्डल के आयुक्त ने अपनी परिपत्र संख्या-81 जे. दिनांक 12 मार्च, 1880 ई. को देवनागरी या कैथी के प्रयोग के लिए आदेश दिया। आदेश में कहा गया कि यह निदेश दिया जाता है कि कैथी और नागरी लिपि का व्यवहार 1 जनवरी, 1881 से निश्चित रूप से पटना प्रमंडल और भागलपुर प्रमण्डल (जिसका आदेश बाद में दिया जाएगा) के सभी जिलों में किया जाएगा और उस तिथि के बाद से फारसी लिपि में किसी प्रकार का कार्य नहीं होगा।[8] आदेश का लहजा बहुत सख्त था और यहां तक कहा गया कि वैसे पुलिस अधिकारी और अन्य कर्मचारीगण, जिन्हें उक्त तिथि के बाद नागरी और कैथी लिपि पढ़ने में असुविधा होगी, वे निश्चित रूप से अपना स्थान छोड़ दें और ऐसे लोगों को काम करने का मौका दें, जिन्हें ये लिपियां आती हों।[9]

इस प्रकार हिन्दी-आंदोलन से बिहार की कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा हो सकी। नागरी के साथ कैथी लिपि का भी प्रचलन कचहरियों में हो सका। कैथी वस्तुतः बिहार के पटना और भागलपुर प्रमण्डलों के ग्रामीण क्षेत्रों की लिपि थी। कैथी लिपि के प्रचलन से नागरी का प्रचलन हुआ, क्योंकि जनता की भाषा हिन्दी थी। अपनी बात वह कैथी लिपि में सुगमता से लिख सकती थी। इससे हिन्दी का प्रसार बन्द नहीं हुआ बल्कि हिन्दी भाषा को कचहरी में प्रतिष्ठित करने में सुविधा मिली।[10]

बिहार के किसी भी प्रेस ने कैथी टाईप नहीं ढाला था और न कैथी में पुस्तकें छापी जाती थीं। अतः अदालतों में कैथी के प्रचलन के बाद अदालती कागजों को कैथी लिपि में छापने की आवश्यकता पड़ी। इस भार को खड्गविलास प्रेस ने अपने ऊपर लिया। इस प्रेस के स्वामी रामदीन सिंह को पटना के तत्कालीन संयुक्त न्यायाधिकारी जी.ए.ग्रियर्सन का सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। ग्रियर्सन महोदय ने सरकार की सहायता से कलकत्ता में कैथी टाईप ढलवाये। उन्होंने 'कैथी कैरेक्टर' नामक पुस्तक भी लिखी। इस पुस्तक में कैथी लिपि का इतिहास और परिचय दिया गया।

बंगाल सरकार के सचिव श्री रेनॉल्ड ने फारसी के स्थान पर कैथी या नागरी को प्रचलित करने के लिए जिला अधिकारियों को 13 अप्रैल, 1880 ई. को आदेश जारी किया जिसमें विस्तार से कहा गया कि इस बिन्दु पर पिछले सात वर्षों से गहन विचार-विमर्श चल रहा था, परन्तु सरकार द्वारा पूर्व में जारी किए गए आदेश को अधिक तवज्जो नहीं दिया जाता था। हालांकि पूर्व में 2 अप्रैल 1874 और 9 जुलाई, 1875 को ही आदेश निकाला गया था कि पटना, भागलपुर और छोटानागपुर प्रमण्डल के जिलों में हिन्दी भाषा में सारे काम काज किए जाएंगे, सारे दस्तावेज हिन्दी में रखे जाएंगे। हालांकि इसमें यह स्वतंत्रता दी गयी थी कि आवेदक चाहे तो अपना आवेदन हिन्दी अथवा उर्दू में सुविधानुसार दे सकते हैं। परन्तु

इस आदेश में यह भी कहा गया कि पुलिस अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को हिन्दी सीखना अनिवार्य होगा ।

अदालत में नागरी और खड्गविलास प्रेस की भूमिका :

बिहार की अदालत में हिन्दी की प्रतिष्ठा के संदर्भ में उपर्युक्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि लगभग बीस वर्षों के अथक प्रयास के बाद वास्तविक रूप से सन् 1870 ई. में अदालतों में नागरी प्रचलित हुई । बिहार के जिन तीन प्रमण्डलों में नागरी का आदेश दिया गया, वे हिन्दी भाषी क्षेत्र रहे हैं, यद्यपि उन क्षेत्रों की मातृभाषा मगही, मैथिली और भोजपुरी रही है । इनमें मगही और भोजपुरी की लिपि कैथी है । इन क्षेत्रों की सामान्य जनता की लिपि भी कैथी रही है । वे कैथी लिपि में हिन्दी लिखते थे । अतः अदालतों में नागरी और कैथी दोनों के प्रचलन की सुविधा दी गई, जिससे नागरी बलवती हुई । यह सोचना सर्वथा भ्रांतिमूलक है कि कैथी के प्रचलन से नागरी को क्षति पहुँची।

कैथी के प्रयोग के फलस्वरूप अदालतों में पर्चे, सरकारी रजिस्टर और जनता से सीधे सम्पर्क से सम्बद्ध कागजों के प्रकाशन का कार्य खड्गविलास प्रेस ने किया । कृषि कर की रसीद कैथी में छापी गई । इससे सामान्य जनता के मध्यम से हिन्दी कचहरी में पहुँच सकी । यह प्रेस बिहार का पहला प्रेस था, जिसने कैथी में पुस्तक छापी । अदालत में हिन्दी के प्रचलन में इस प्रेस का सर्वाधिक व्यवहारिक योगदान था ।

सन् 1837 ई0 के सरकारी निर्णय के बाद बिहार की जनता शिक्षा और कचहरी के भाषा-माध्यम के रूप में हिन्दी की आवश्यकता महसूस करने लगी । लेकिन सन् 1860 ई0 तक इस दिशा में प्रगति नहीं हुई । केवल बिहार की हिन्दी-भाषी जनता की आंखों के आँसू पोंछने के लिए कैथी लिपि का प्रयोग शुरू करा दिया गया, लेकिन इससे जनता को कोई लाभ नहीं हुआ । सौभाग्य की बात यह थी कि सन् 1877 ई0 में बिहार के स्कूलों का निरीक्षक होकर भूदेव मुखोपाध्याय का पटना आगमन हुआ ।

बिहार के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने पर हिन्दी में गणित की आवश्यकता हुई। खड्गविलास प्रेस ने इस ओर ध्यान देकर पाठ्य-पुस्तकों का भी प्रणयन कराया । इस संस्था की गणित की पाठय-पुस्तकें पूरे बिहार में प्रचलित थीं । साथ ही इन गणितीय पाठ्य-पुस्तकों ने एक स्तर स्थापित किया। खड्गविलास प्रेस की गणित की पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों में रामदीन सिंह, साहब प्रसाद सिंह, लक्ष्मीशंकर नागर, उमानाथ मिश्र, रामगूदर सहाय, कालिकाप्रसाद सिंह, गोकर्ण सिंह और हरिऔधजी के नाम उल्लेखनीय हैं । साहब प्रसाद सिंह की कृतियों में 'गणित-बत्तीसी' (सन् 1879 ई0), 'गुरु-गणित-शतक' (सन् 1882 ई0) और 'गणित बत्तीसी' (चार भाग) मुख्य हैं । गणित बत्तीसी, बड़ी रचना है, इसमें गणित के सूत्रों को पद्यबद्ध किया गया है, जिससे कठिन सूत्रों को याद रखनें में सुविधा होती है । उन सूत्रों के आधार पर गणित की कठिन-से-कठिन गुत्थियों को आसानी से सुलझाया जा सकता है । उदाहरणस्वरूप एक सूत्र इस प्रकार है, जिसमें किसी वस्तु के एक मन के दाम के आधार

पर एक सेर की कीमत निकालने का सूत्र बताया गया है :"

जै रुपए को एक मन, करो अष्टगुण ताहि ।
सोई दाम प्रमाण है, सेर भरे पर चाहि ॥

गणित बत्तीसी को बाद में विस्तार कर उसे चार भागों में कर दिया गया । यह पुस्तक कैथी और देवनागरी दोनों लिपियों में छापी गयी थीं।

खडगविलास प्रेस के बाबू रामदीन सिंह को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पत्र लिखा था ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द के पत्र : बाबू रामदीन सिंह के नाम

संकलन का पत्र संख्या -10

15-3-84 (1884)

प्रियवरेषु,

आपके पत्र और पुस्तक भी मिले । आप एक मुसौदा कराकर भेज दीजिए तो उसी अनुसार स्टैम्प पर लिख पढ़ जाए ।

एक भाषासार और एक कैथी ग्रामर हमारे वास्ते भी भेज दीजिएगा ।

भाग्य अब हो जाए । मैं पटने से आकर फिर बीमार पड़ा था । इससे विलम्ब हो गया ।

आपका - हरिश्चन्द्र

संदर्भ :

1. डॉ. धीरेन्द्र नाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना-2007, पृ० 81
2. वही-पृ-245, अध्याय, बिहार में हिन्दी आंदोलन का सर्वेक्षण
3. क्रिस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्विज टू स्क्रिप्टस
4. डा० धीरेन्द्र नाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्ग विलास प्रेस की भूमिका
5. वही
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही

सरकार की भाषा नीति

कैथी लिपि के कई सहोदरा थी – महाजनी, मूरिया और सर्राफी । इनमें अधिकतर अक्षरों में समानता थी । व्यापारी समुदाय इन लिपियों का उपयोग करते थे । इन अक्षरों का उपयोग इसलिए भी किया जाता था क्योंकि ये नागरी लिपि से निकली हुई लिपि थी और इसके माध्यम से शब्द बहुत तेजी से लिखे जा सकते थे । लेकिन आलोचकों का यह भी मत है कि कैथी पढ़ने में इतनी अस्पष्ट होती थी कि इस लिपि में उन बातों को भी लिखा जा सकता था, जिसे दूसरों से छिपाकर रखी जाए ।[1]

संयुक्त प्रान्त में कैथी का विरोध वर्ष 1847 में ही आरंभ हो गया था जब कैथी के बदले नागरी लिपियों को आगरा जिला में ग्रामीण विद्यालयों में पठन-पाठन की सरकारी लिपि के रूप में मान्यता मिली । रेवेन्यू विभाग के सदर बोर्ड द्वारा वर्ष 1852 में आदेश दिया गया कि ग्राम का वार्षिक कागजात हिन्दी में लिखी जाए ।[2]

संयुक्त प्रांत का शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन (वर्ष 1856-57/1857-58)

सरकार की लिपि संबंधी नीति का व्यापक असर शिक्षा एवं प्रशासन संबंधी कार्यों पर पड़ना अवश्यंभावी था । संयुक्त प्रान्त एवं बिहार में इसका अलग-अलग असर पड़ा । असर पड़ने का एक खास कारण जमीन बंदोबस्ती का अलग-अलग तरीका होना था – बंगाल राज्य समिति (कलकत्ता, 1884, पृष्ठ 46-47) ने स्पष्ट किया –

बिहार में ग्रामीण स्कूल, जिसे पाठशाला कहा जाता है, की संख्या बहुत अधिक है । इन विद्यालयों में बच्चों को कैथी लिपि सीखाई जाती है । परन्तु इस लिपि को मान्यता नहीं मिली है । अब सरकार ने इसका पर्यवेक्षण अपने हाथ में ले लिया है और यदि सभी लोगों को

शिक्षा से जोड़ना है तो इसके लिए कैथी ही सबसे उपयुक्त लिपि हो सकती है। जहां तक फारसी लिपि का प्रश्न है, यह अभी भी हिन्दू एवं मुसलमान के उच्च वर्गों में ही लोकप्रिय है। परन्तु कैथी हिन्दू और मुसलमान सबमें लोकप्रिय है।[3]

सरकार द्वारा जब से नए ढंग से शिक्षा पद्धति का आरंभ किया गया है, कैथी ही सबसे अधिक लोकप्रिय होने के समाचार मिले हैं। ये बातें भी सामने आयी हैं कि कैथी न सिर्फ बिहार में लोकप्रिय है बल्कि अवध और अन्य उत्तर पश्चिमी प्रान्तों में भी लोकप्रिय है।

प्राथमिक शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के उद्येश्यों को सामने रखते हुए उत्तर पश्चिम प्रांत और अवध की सरकार द्वारा कैथी की उपेक्षा की गई है और कैथी के स्थान पर देवनागरी लिपि को सरकार की मान्यता मिली है। यही काम यहां नहीं किया जाना चाहिए और यही अंतिम निर्णय है। लेकिन यहां पर इससे थोड़ा भिन्न कार्य करना होगा क्योंकि यह विदित हो गया है कि ग्रामीण दस्तावेज (पटवारी पेपर) से कैथी को हटा देने के बाद अवध का दस्तावेजीकरण बहुत प्रभावित हुआ है और इसका असर ग्रामीण शिक्षा पर भी पड़ा है। लेकिन बिहार में थोड़ी दूसरी स्थिति है और यहां पर स्थायी बंदोबस्ती की प्रथा होने के कारण 'पटवारी पेपर' की आवश्यकता बंदोबस्ती कार्यों में नहीं के बराबर है। इसलिए यहां पर संयुक्त प्रान्त जैसी स्थिति आए, इसका प्रयास होना चाहिए। बिहार की ग्रामीण पाठशालाओं में पहले से कैथी लिपि पढ़ाई जाती है और धीरे-धीरे फारसी लिपि का प्रचलन कम होता जा रहा है। इसलिए जिस प्रकार बंगाल में 1839 में फारसी के स्थान पर बांग्ला को स्थापित किया गया और उसका कोई खास विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा, उसी तरह यदि बिहार में फारसी के बदले कैथी या नागरी को प्राथमिक पाठशाला की लिपि के रूप में मान्यता दी जाती है तो कोई खास विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। (शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन,पृष्ठ 46-47, अवध शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, 1873-74,पृष्ठ-150, उत्तर पश्चिम और अवध शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन, 1880-81, पृष्ठ 77-78)[4]

उत्तर पश्चिम राज्यों और अवध में कैथी लिपि के संबंध में जो निर्णय लिए गए, उसका आधार पटवारी पेपर ही था। इसके लिए हमें यह अध्ययन करना होगा कि इन राज्यों में पटवारी की नियुक्ति किस प्रकार की जाती थी। उत्तर पश्चिमी प्रान्तों में कभी भी यह ख्याल नहीं रखा गया कि पटवारी उन्हीं को नियुक्त किया जाए जो कैथी लिपि निश्चित रूप से जानते हों या सिर्फ कैथी ही जानते हों। लेकिन अवध में ऐसा किया गया। अवध के जमींदारों के मन में कैथी को लेकर कोई विमुखता नहीं थी। उन्होंने पटवारी की नियुक्ति में कैथी की जानकारी को अनिवार्य बनाया। यही हाल बिहार में हुआ। यहां पर स्थायी बंदोबस्ती की प्रथा थी और सरकार के हाकिमों को पटवारी पेपर से कोई लेना-देना सीधे तौर पर नहीं होता था। इसलिए पटवारी लोगों ने जमीन से संबंधित दस्तावेज कैथी में लिखने की अपनी पुरानी परंपरा कायम रखी। इसका असर यह भी हुआ कि वही पटवारी बनते थे जिन्हें कैथी का ज्ञान होता था।[5]

केन्द्रीय राज्य और बिहार में यही स्थिति हुई कि कैथी और नागरी लिपि का शिक्षा और पाठ्यक्रम में विस्तार होता चला गया ।"

आगरा जिला में शिक्षा की स्थिति

आगरा जिला का शिक्षा प्रतिवेदन सी.सी.फिंक साहब ने तैयार किया था । उन्होंने आगरा जिला के प्राथमिक विद्यालयों को चार श्रेणी में बांटा है - हिन्दी स्कूल (128), फारसी स्कूल (85), संस्कृत (6) और अरबी (1)

हिन्दी विद्यालयों की कुल 128 संख्या में से करीब चौथाई हिस्सा (30) ऐसे स्कूलों की थी जहां संस्कृत को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था । इन विद्यालयों के अधिकांश बच्चों को सामान्य अंकगणित, कृषि संबंधी हिसाब अथवा वाणिज्यिक हिसाब-किताब और नागरी और उसके हस्तलिखित स्वरूप कैथी और महाजनी में पढ़ना-लिखना सीखाया जाता था । इन विद्यालयों में से मात्र 18 आगरा शहर में अवस्थित थे और इनमें मात्र 130 शिक्षक थे। इन शिक्षकों में ब्राह्मणों की संख्या 510, सबसे अधिक थी । 14 कायस्थ और 1 राजपूत शिक्षक थे । छात्रों की कुल संख्या 1406 थी जिनमें सबसे अधिक ब्राह्मण 510, बनिया 538 और राजपूत 151 थे । कायस्थ छात्रों की संख्या 59 और मुस्लिम की संख्या 20 थी । 128 ऐसे छात्र थे जो हिन्दू तो थे परन्तु अन्य वर्गों से आते थे । इन छात्रों में से अधिकतर या तो व्यवसायी (दूकानदार) बनना चाहते थे अथवा पटवारी (गांव में जमीन संबंधित कागजात एवं लेखा-जोखा रखनेवाला) । शिक्षकों में ब्राह्मण शिक्षक सबसे अधिक अंकगणित पढ़ाते थे । छात्रों में ब्राह्मण, राजपूत और बनिया छात्रों की संख्या सबसे अधिक थी जो गांव में रहकर ही कुछ न कुछ करना चाहते थे ।

प्रतिवेदन में कहा गया है कि आगरा नगर में 53 फारसी स्कूल थे और इनके शिक्षकों में सबसे अधिक (75) मुसलमान थे और बाकी 10 कायस्थ थे । इन विद्यालयों में पढ़नेवाले बच्चों की संख्या 740 थी और आधे से कुछ अधिक यानी 393 बच्चे मुस्लिम थे और 195 कायस्थ थे । बाकी बच्चों में 46 बनिया, 39 राजपूत, 30 अन्य हिन्दू थे । फारसी विद्यालयों के बच्चों में अधिकतर सरकारी नौकरी की आस में रहते थे और इनमें से अधिकांश अधिक पढ़ना चाहते थे जबकि हिन्दी विद्यालयों में ऐसे सोच वाले छात्रों की संख्या नगण्य थी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि फारसी विद्यालयों में पढ़नेवाले छात्रों में अधिकतर शहर में रहनेवाले मुस्लिम और कायस्थ परिवार के बच्चे थे और यही वर्ग उस समय सरकारी सेवा में अधिक से अधिक आए ।

यदि कोई हिन्दी और फारसी विद्यालयों के सांख्यिकी का गहन अध्ययन करता है तो उसे और कई मनोरंजक तथ्य हासिल होंगे । हिन्दी विद्यालयों में मुस्लिम शिक्षकों की संख्या एक भी नहीं थी और सिर्फ पांच प्रतिशत मुस्लिम छात्र हिन्दी विद्यालयों में पढ़ते थे । फारसी विद्यालयों के शिक्षक या तो मुसलमान थे अथवा कायस्थ । इन दोनों जातियों को छोड़कर तीसरी जाति का कोई भी शिक्षक फारसी विद्यालय में नहीं था । फारसी विद्यालयों में मुसलमान और कायस्थ को छोड़कर बहुत कम बच्चे (मात्र 10 प्रतिशत) अन्य जातियों के पढ़ते थे।

कायस्थ शिक्षकों और बच्चों का अनुपात भी बहुत दिलचस्प था । हिन्दी विद्यालयों में कायस्थ शिक्षकों का अनुपात 59 प्रतिशत था और 41 प्रतिशत कायस्थ शिक्षक फारसी विद्यालयों में थे और लगभग यही प्रतिशत छात्रों का भी था । लगभग 60 प्रतिशत कायस्थ छात्र हिन्दी विद्यालयों में पढ़ते थे और 40 प्रतिशत छात्र फारसी विद्यालयों में । वैसे कायस्थ जाति के कुल बच्चों का 77 प्रतिशत फारसी विद्यालयों में पढ़ते थे ।

जिला दर जिला शिक्षा का कमोवेश यही आँकड़ा सामने था । फारसी विद्यालयों में मुस्लिम और कायस्थ बच्चों की संख्या सबसे अधिक थी और हिन्दी विद्यालयों में कायस्थ को छोड़कर अन्य जातियां विशेषकर ब्राह्मण, बनियां और राजपूत जाति के बच्चों की संख्या सबसे अधिक थी । यही आंकड़ा उत्तर पश्चिमी राज्यों और अवध के लगभग सभी जिलों का था ।

हिन्दी-उर्दू विवाद – इस संबंध में बाबू शिव प्रसाद जी के लेख और उनके द्वारा समर्पित अभ्यावेदन बहुत महत्वपूर्ण हैं । हालाँकि प्रतिवेदन तैयार करते समय इसकी काफी चर्चा हुई परन्तु बाद के दिनों में इस पर 'निजी वितरण हेतु मात्र' का मुहर लगा दिया गया । इसमें हिन्दी भाषा, देवनागरी और कैथी लिपि के संबंध में विस्तार से चर्चा है ।[8]

मुसलमान का देश पर आधिपत्य होने के बाद, मुस्लिम शासकों ने देखा कि इस देश में हिन्दी भाषा का प्रचलन था और एक ही लिपि से पूरे देश का कारोबार होता था । 'पूरे देश' से उनका संबंध उत्तर भारत की वृहद मैदानी इलाका जिसमें बिहार, उत्तर पश्चिमी प्रांत, अवध, राजपूताना, पंजाब, मध्य प्रांत के कुछ हिस्से शामिल थे । इन क्षेत्रों में हिन्दी और उसकी कुछ क्षेत्रीय बोली थी और लिपि में देवनागरी और इसके हस्तलिखित स्वरूप जिनमें कैथी भी था, ही प्रमुख थी ।

शिवप्रसाद आगे लिखते हैं कि तत्कालीन मुस्लिम राजाओं में हिन्दी भाषा सीखने की ललक का अभाव था और उन्होंने हिन्दूओं को फारसी सीखने के लिए बाध्य किया । उस समय जिन्हें भी धन और शक्ति की लालसा थी, उन्होंने फारसी का ज्ञान प्राप्त किया । मुस्लिम राजप्रासाद और न्यायालय के बाहर का कोई भी व्यक्ति फारसी सीखने को उत्सुक नहीं होता था और सभी लोग पूर्व की तरह हिन्दी में ही कामकाज करते थे । हालाँकि उसने विशेष रूप से कायस्थ का वर्णन किया है जिसने फारसी का ज्ञान प्राप्त किया । इसका अध्ययन किया और मुगल दरबार में न सिर्फ नौकरी की बल्कि उच्च पदों पर विश्वासपात्र के रूप में बने रहे। कायस्थ के बारे में अपरोक्ष रूप से यहां तक कहा गया कि मुस्लिम राजाओं के निकट रहने के कारण मुस्लिम संस्कृति का इन पर गहरा असर पड़ा और इस जाति को आधे मुसलमान के रूप में गिनती होने लगी । कायस्थ को छोड़कर अन्य जाति हिन्दी को अपनाए रखे थे। फारसी शब्दों का समागम स्थानीय हिन्दी भाषा में होने लगा और धीरे-धीरे फारसी-हिन्दी के संयोग से एक नयी भाषा अद्धफारसी या उर्दू बनी ।

सरकार की दोरंगी नीति

प्रसिद्ध लेखक पॉल ब्रास" स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि किसी भी भाषा या लिपि के विकास में उस क्षेत्र की स्थानीय राजनीतिक दबाव समूहों की भूमिका एवं सरकार की नीति बहुत प्रभाव डालती है क्योंकि इस नीति का सीधा असर स्थानीय निवासी समूह के अंर्तसंबंध पर पड़ता है। उत्तर प्रदेश में अंगरेजी शासक द्वारा अपनाई गई भाषा नीति का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी और उर्दू से संबंध रखने वाले नागरिकों के समूह पर पड़ा। भारतीय लेखकों ने अंगरेज सरकार की इस नीति को सरल शब्दों में 'फूट डालो और शासन करो' की संज्ञा दी और उनके इस वाक्य का अर्थ सामान्य जनता बहुत अच्छी तरह समझ भी लेती है। भारतीय लेखकों की इस सोच को ब्रिटिश विद्वान एक हद तक सही ठहराते भी हैं। परन्तु उनका कहना होता है कि भारतीय लेखक सरकार के नीति निर्धारण के लिए जिम्मेवार तथ्यों को जान-बूझकर देखने की कोशिश नहीं करते हैं। अपने उदाहरण के रूप में बताते हैं कि तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा वर्ष 1900 में अंगीकार किए गए भाषा नीति किसी भी प्रकार घृणा, शोषण या अन्य नकारात्मक सोच नहीं था। अपने उदाहरण को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि मैकडोनेल्स द्वारा भाषा के संबंध में बार-बार नीति में परिवर्तन किया जाना इस बात का सूचक है कि इस संबंध में नीति निर्माताओं के समक्ष पर्याप्त आधार नहीं थे और निर्णय लेने के लिए आवश्यक आंकड़े भी नहीं थे।

ब्रिटिश पदाधिकारी 'शोर' ने निर्णय लिया कि सोगौर और नेरबुदा शासन क्षेत्र में स्थानीय लिपि के रूप में नागरी ही रहेगी। अवध में यदि कैथी को राजकीय लिपि का दर्जा दिया गया तो इसके पीछे यह उद्येश्य नहीं था कि स्थानीय जनता को उर्दू-हिन्दी-देवनागरी कैथी के मसलों पर उलझाया जाए और आपस में ही वैमनस्य पैदा कर दिया जाए। क्या ऐसी बात नहीं है कि ये नीतियां और निर्णय स्थानीय क्षेत्र के संबंध में परस्पर समन्वय का अभाव, परस्पर गलत सोच, गलत धारणा के कारण लिए गए।

प्राथमिक शिक्षा और कैथी लिपि

हम अलग-अलग इन स्थितियों पर विचार करते हैं कि अंगरेज सरकार के तत्कालीन अधिकारी यदि उत्तर प्रदेश में उर्दू को प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षा का माध्यम बनाया होता तो क्या परिस्थितियां होती और यदि कैथी को बनाया होता तो क्या स्थिति होती। यदि नागरी के बदले कैथी को शिक्षा की शासकीय लिपि के रूप में मान्यता दी होती तो कैथी को शायद वही स्थान मिला जो आज की तारीख में उर्दू को है। परन्तु नागरी के पक्ष में जो नागरिक समूह दबाव बना रहे थे वे कुछ अधिक उग्र हो जाते। लेकिन नागरी लिपि के माध्यम से सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार की जो योजना बनी थी उसके कार्यान्वयन में थोड़ी रूकावट अवश्य आ जाती।"

वस्तुतः वर्ष 1840 में ही इस योजना का खाका प्रसिद्ध शिक्षक वैलेंटाईन महोदय और उनके छात्रों की टोली द्वारा खींचा जा चुका था। यदि सरकार के पदाधिकारी हिन्दी के संबंध में

निर्णय लेने से थोड़ा भी इधर-उधर भटकते तो हिन्दी आज इस स्वरूप में नहीं मिलती। हाँ, खरी बोली एक अलग स्वरूप में विकसित होती। यह भी स्पष्ट है कि उसी समय कैथी के पक्ष में यदि नीतिकारों ने थोड़ा भी न्यायपूर्ण निर्णय लिया होता तो आज कैथी की यह स्थिति नहीं होती, कम से कम उर्दू से अधिक कैथी जाननेवालों की संख्या अवश्य रहती।

कैथी नागरी लिपि की हस्तलिखित स्वरूप है और उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में कैथी लिपि का प्रयोग हिन्दू व्यापारी और सौदागर किया करते थे। उत्तर पश्चिमी प्रांत और अवध तथा बिहार के व्यापारी एवं पटवारी करते थे। यह स्थिति कई दशकों तक रही। कैथी बिहार की शासकीय लिपि भी रही।[11]

हिन्दुस्तानी अकेडमी - इसकी स्थापना वर्ष 1927 में हुई और स्थापना में प्रांतीय सरकार का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त था। इस अकेडमी के गठन एवं संचालन में कायस्थों की भूमिका महत्वपूर्ण थी।[12]

कैथी का संघर्ष - नागरी एवं फारसी से शत्रुता

अभी तक इस पर शोध एवं अध्ययन नहीं हुआ है कि नागरी लिपि को कैथी लिपि से किस प्रकार संघर्ष करना पड़ा और नागरी लिपि अपने विकास के क्रम में कैथी लिपि को किस प्रकार पीछे छोड़ दी। इस विकास यात्रा में नागरी को किन-किन वर्गों, दबाव समूहों, सरकारी अधिकारियों एवं स्नेहजनों का समर्थन प्राप्त हुआ। आखिर इन वर्णों को कैथी से किस प्रकार का दुराव था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि कैथी किसी षडयंत्र का शिकार बन गई। नीति-निर्माताओं ने कहीं भावना, द्वेष या अन्य मानव सुलभ आवेग में आकर ऐसा निर्णय कर डाला जिससे कैथी जैसी समृद्ध, ऐतिहासिक, जन-जन में रची-बसी लिपि इस संपूर्ण भू-भाग से विदा हो गई। इस तरह के शोध का अभाव दिखाई पड़ रहा है। अंग्रेज शोध कर्ता 'डिटमर' और 'ल्यूट' ने हालांकि इससे जुड़े हुए पहलू पर कुछ अध्ययन किए हैं, परन्तु उनके अध्ययन का केन्द्र मुख्य रूप से सरकारी नौकरी ही रहा है, जिसके लिए हिन्दू और मुसलमान, दोनों वर्गों में एक प्रकार की प्रतियोगिता थी। इस प्रतियोगिता के बारे में अंग्रेज सरकार बिलकुल वाकिफ थे और उन्होंने प्रांत की भाषा नीति को इस प्रतियोगिता के साथ जोड़ दिया। परन्तु शोधार्थी ने अपना ध्यान हिन्दू वर्ग के भीतर नागरी लिपि का कैथी के संघर्ष एवं हिन्दी का ब्रजभाषा के साथ संघर्ष पर अध्ययन नहीं किया है। दूसरी ओर नागरी, कैथी, हिन्दी, ब्रजभाषा के उत्थान में लगे संगठनों के संरचना, नेतृत्व, सदस्यों की संख्या एवं उसके आय के स्त्रोत के बारे में विस्तार से अध्ययन नहीं किया है जिससे अन्य बातों की जानकारी हो सकती थी।

हिन्दी भाषा में खरी बोली सम्मिलित थी और इसमें अन्य लिटरेरी बोली भी शामिल थी। इस अवधि तक आते-आते जन समुदाय भाषा एवं लिपि को लेकर कई धड़ों में विभक्त हो गया। मुसलमान का एक वर्ग फारसी एवं उर्दू के पक्ष में खड़ा हो गया। यह वर्ग जहां एक तरफ फारसी - उर्दू के पक्ष में नौकरी एवं अन्य स्वार्थ देख रहे थे, वहीं दूसरी ओर हिन्दू के एक वर्ग के ऊपर अपनी रजामंदी भी थोपना चाह रहे थे। हिन्दू का भी एक वर्ग फारसी

एवं उर्दू के पक्ष में था। हिन्दू का ही दूसरा वर्ग हिन्दी के बदले खरी बोली के पक्ष में था। नागरी लिपि के संबंध में भी यही स्थिति थी। नागरी लिपि के बदले एक तरफ उर्दू की तरफदारी हो रही थी तो दूसरी ओर कैथी की और सबके अपने-अपने तर्क थे ।[13]

हिन्दू का ऐसा वर्ग जो हिन्दी के पक्ष में खड़ा था, अंततः विजयी रहा । लेकिन हिन्दू का यह वर्ग अपने पक्ष में संपूर्ण समुदाय को नहीं कर सका । हिन्दू का वर्ग उर्दू, फारसी, खरी बोली, ब्रजभाषा, हिन्दी, नागरी, कैथी के पक्ष में विभक्त हो गया था और एक वर्ग दूसरे वर्ग पर अपना तर्क हावी करना चाहता था । हिन्दू और मुसलमान का वर्ग उर्दू -फारसी से लगाव होने के कारण इसके पक्ष में अपना तर्क देता था ।[14]

भाषा एवं लिपि की यह रस्साकस्सी काफी दिनों तक चली । हिन्दी आंदोलन के शुरू होने के पहले यह विवाद आरंभ हो गया था । कविता में खरी बोली के सामने ब्रजभाषा का कद लगातार ऊंचा होता जा रहा था । वर्ष 1880 तक इस विधा में कविता तो मिलते हैं परन्तु छायावाद आंदोलन का वर्ष 1920 में अवतरित होने के बाद ब्रजभाषा कमजोर पड़ती चली गयी । कुछ यही स्थिति नागरी का प्रवाही लेखन रूप कैथी की हुई, लेकिन भारत के स्वतंत्रता के दिन तक खरी बोली, ब्रजभाषा एवं कैथी समाज के मानस मानचित्र से धूमिल होते चली गयी ।[15]

समाज एवं सरकार के सम्मुख एक अनोखी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । हिन्दी के समर्थकों के समक्ष तीन विकल्प थे - आखिर हिन्दी के किस स्वरूप का चयन किया जाए - ब्रजभाषा, खरी बोली या हिन्दुस्तानी । हिन्दी आंदोलनकारियों में मतैक्य नहीं था । यही स्थिति लिपि की थी । नागरी का प्रचलन और लोकप्रियता कैथी के मुकाबले बहुत कम थी । स्थिति ऐसी हो गयी कि भाषा के स्थान पर उपभाषा का चयन किया गया और कैथी के मुकाबले कम लोकप्रिय नागरी लिपि का भी चयन किया गया ।[16]

ब्रजभाषा और अवधी आंदोलनकारियों के सम्मुख नतमस्तक हो चुकी थी । कैथी के संबंध में भी कई तरह के राय सामने आए । एक वर्ग के लिए कैथी जटिल थी, दूसरे के लिए आसान। कोई कैथी के परंपरागत स्वरूप को अक्षुण्ण रखने के लिए अडिग थे तो कोई कैथी के स्वरूप में थोड़ा परिवर्तन करते हुए इसके आसान संस्करण के पक्ष में थे ।

सदर कोर्ट, बंगाल ने वर्ष 1839 में आदेश जारी करते हुए कहा कि नागरी लिपि को शनैः-शनैः एवं सावधानीपूर्वक समाज में प्रचलित किया जाए । लेकिन इस आदेश के एक साल बाद ही भारत सरकार ने इस आदेश पर रोक लगा दिया और नया आदेश जारी करते हुए कहा कि किसी भी न्यायिक पदाधिकारी द्वारा नागरी लिपि का व्यवहार नहीं करेंगे, जब तक कि भारत सरकार द्वारा इसके लिए विशेष अनुमति न दे दी जाए । इस मामले में भारत सरकार और उत्तर पश्चिम प्रांत के बीच कई चरणों के पत्र व्यवहार हुए और अंतिम निष्कर्ष यही निकला कि इस प्रांत के अधिकतर न्यायिक पदाधिकारी उर्दू भाषा एवं फारसी लिपि के पक्ष में हैं । सरकार के इस निर्णय के बाद नागरी-हिन्दी आंदोलन को कुछ वर्ष के लिए विराम सा लगा । हिन्दू मुस्लिम के मौखिक विवाद एवं अंग्रेज अधिकारियों के निर्णय के बीच नागरी

लिपि अपनाने संबंधी प्रतियोगिता मद्धिम पड़ती चली गयी । उर्दू-फारसी को इस अवधि तक राजकीय संरक्षण प्राप्त था, परन्तु अंग्रेज हाकिम भी उर्दू-फारसी के पक्ष में बहुत अधिक नहीं थे। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक कोई भी हिन्दू संगठन अथवा हिन्दी के पक्षधरों का संगठन नागरी लिपि एवं हिन्दी भाषा के गुणों, उपयोगिता के संबंध में मुखर होकर अपनी बात रखने की योग्यता रखता था । इसलिए इस अवधि तक सांकेतिक रूप से भी हिन्दी भाषा हिन्दुओं की नहीं थी । परन्तु यहां आकर नागरी लिपि को अपने कुल की सहोदरा कैथी से अस्तित्व का संघर्ष आरंभ हो गया था । इस समय तक हिन्दी, जिसे खरी बोली हिन्दी कहा गया, का कहीं भी नाम-ओ-निशान नहीं था । यदि कोई उर्दू से हिन्दी को अलग करने की बात करता तो इसका यह अर्थ निकाला जाता कि हिन्दू और मुसलमान को अलग किया जा रहा है । ऐसी हिन्दी को 'शुद्ध हिन्दी अथवा संस्कृतयुक्त हिन्दी' कहा गया ।'[7]

समाज के अधिकांश लोग कैथी लिपि का ही प्रयोग करते थे । बिहार एवं उत्तर पश्चिम प्रांत के अधिकांश लोग, इनमें उर्दू भाषी लोग भी शामिल थे, खरी बोली के स्थान पर ब्रजभाषा कविता के लिए और लिपि के लिए नागरी के स्थान पर कैथी का प्रयोग करना चाहते थे।'[8]

बंगाल प्रेजीडेंसी और कैथी

बंगाल के सदर कोर्ट के सम्मुख यह प्रश्न था कि न्यायालय एवं शासन की भाषा और लिपि के रूप में किसका चयन किया जाए । सर्वप्रथम बांग्ला भाषा और लिपि पर विचार किया गया । बांग्ला के विरोध में यह तर्क दिया गया कि इस भाषा के कई क्षेत्रीय भेद हैं । संपूर्णता में नहीं होने के कारण इसे न्यायालय की भाषा बनाना कठिन है क्योंकि यदि इसे न्यायालय की भाषा बनायी जाती है तो न्यायालय में हरेक बोली से संबंधित कागजात आएंगे और ऐसी स्थिति में प्रत्येक बोली के लिए अलग-अलग पढ़नेवाले को न्यायालय में नौकरी देनी होगी। न्यायालय का दूसरा तर्क यह था कि यदि बांग्ला अथवा हिन्दी को न्यायालय की लिपि बनाई जाती है तो फारसी की तुलना में तीन गुना अधिक समय इसे लिखने में लगेगा । उत्तर पश्चिम प्रांत के सदर न्यायालय द्वारा इस तर्क की चर्चा कई बार की गयी ।

नागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी भाषा के संबंध में यह तर्क दिया गया कि इसके अनेक रूप एवं भेद हैं । और इसका रूप जिला बदलने के साथ ही बदल जाता है और यहां तक कि जिला के भीतर भी इसके रूप में परिवर्तन होते हैं । इसलिए इस पर विचार करना उचित नहीं है और इसे न्यायालय की लिपि में स्वीकार करना उचित नहीं होगा । नागरी लिपि को इसलिए भी स्वीकार नहीं किया गया कि इस लिपि में लिखने की गति काफी धीमी होती थी और इसे पढ़ पाना भी कठिन मालूम पड़ता था । एक और बात नागरी के संबंध में कही गयी कि इसके अक्षरों में समानता नहीं पाई जाती थी और अलग-अलग प्रांतों में अक्षरों को लिखने की पद्धति अलग-अलग थी । कैथी लिपि के संबंध में गंभीर टिप्पणी यह की गयी कि कैथी लिखने में लोगों द्वारा सावधानी नहीं बरती जाती है और इसके लिखावट पर दो व्यक्ति सहमत नहीं हो सकते हैं ।

मूल्यांकन में भाग लेने वाले अधिकांश व्यक्ति इस बात से सहमत थे कि फारसी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो सर्वथा अनुकूल है । फारसी के पक्ष मे तर्क दिया गया कि बंगाल प्रेजीडेंसी में फारसी ही एक ऐसी भाषा है जिसका प्रसार सबसे अधिक है । अभी भी मुसलमान एवं हिन्दू दोनों समुदाय के उच्च वर्ग इस भाषा को जाननेवाले हैं । कुछ लोगों का यह भी तर्क था कि फारसी न्यायालय की भाषा होने के कारण हजारों का जीवन-यापन इस भाषा के माध्यम से हो रहा है और किसी भी प्रकार का परिवर्तन इनके जीविका को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है । अतएव इसे बनाए रखा जाना चाहिए। सामाजिक पक्षों की भी मूल्यांकन में चर्चा की गयी और फारसी को सामाजिक सामंजस्य का भाषा बताकर इसे न्यायालय की भाषा के रूप में बनाए रखने के तर्क दिए गए । कुछ लोगों का यह भी तर्क था कि भाषा के मामले मे्ं यथास्थिति बनाए रखना चाहिए । कुछ लोग इस बात के समर्थक थे कि अंगरेजी राज होने के कारण अब न्यायालय की भाषा अंगरेजी बना दी जानी चाहिए ।

यहां यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि आखिर अंग्रेज हाकिमों के सामने विचारणीय प्रश्न यह क्यों था कि मुगल साम्राज्य की अवधि से चली आ रही व्यवस्था को समाप्त कर एक नई शुरूआत की जाए । इसके पीछे अंग्रेज हाकिमों का विश्वास था कि न्यायालय की वही भाषा और लिपि होनी चाहिए जो आम जनता की लिपि हो । इसके लिए वे कुछ अधिक ही आग्रही थे । अंग्रेज हाकिमों में तत्कालीन उत्तर पश्चिम प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर चार्ल्स मेटकॉफ ने स्पष्ट एवं दृढ़ शब्दों में अपने विचार व्यक्त किया था कि समाज एवं आम जनता की जो भाषा है, वही न्यायालय की भी भाषा होनी चाहिए । परन्तु इस बात पर वे एकमत नहीं थे कि आखिर कौन सी बोली, भाषा अथवा लिपि की मान्यता दी जाए। उन्हें पूरे उत्तर भारत के बारे में विचार कर निर्णय लेना था और उत्तर भारत के विभिन्न भौगोलिक उपक्षेत्र में अलग-अलग भाषा और लिपि प्रचलित थे । ऐसी स्थिति में उनके सम्मुख कठिनाई थी । हालांकि उनका स्पष्ट मत यह भी था कि निर्णय जनता के पक्ष में होनी चाहिए, अर्थात् ऐसी भाषा और लिपि का चुनाव करना चाहिए जिसे अधिक से अधिक संख्या में जनता जानती और समझती हो । निर्णय लेने में वे हाकिमों की सुविधा-असुविधा का ख्याल नहीं करना चाहते थे । पटना सिटी कोर्ट के फारसी के उद्‌भट जानकार एवं जज मॉरिस साहब ने इसके संबंध में सूत्रपात किया था और उनके द्वारा कही गयी बातों का व्यापक असर हुआ था । उन्होंने कहा था कि जनता की भाषा एवं लिपि दो में से एक ही हो सकती है - या तो फारसी लिपि में लिखी हुई उर्दू अथवा नागरी या कैथी लिपि में लिखी हुई हिन्दी। जनता के सबसे बड़े वर्ग में प्रचलित हिन्दी का ही सरकार द्वारा चयन किया जाना चाहिए।

नागरी लिपि के बारे में बार-बार यही मत प्रकट किया गया कि इसे लिखने में मुश्किल होती है और इस लिपि में तेजी से लिखा जाना संभव ही नहीं है । नागरी और हिन्दी के पक्ष में तर्क देनेवालों ने लगातार इसका खंडन किया और कई जगहों पर तेजी से नागरी लिखकर प्रदर्शन भी किया गया । इस संबंध में पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा लिखे गए दस्तावेजों में विस्तार से वर्णन किया गया है । भाषा के प्रश्न को लेकर कई स्तरों पर मदन मोहन मालवीय की आलोचना भी हुई । पहली आलोचना तो यह हुई कि मालवीय जी एक से अधि

क स्थानों पर हिन्दी और उर्दू भाषा एवं लिपि को पृथक करने में चूक गए हैं । कई जगहों पर उन्होंने सिर्फ भाषा के परिवर्तन के पक्ष में खड़े होते देखा गया तो कई जगहों पर उन्होंने सिर्फ लिपि के परिवर्तन के पक्ष में तर्क दिए । इतना ही नहीं, कई जगहों पर उन्होंने भाषा एवं लिपि, दोनों के परिवर्तन के पक्ष में तर्क दिए हैं । भाषा के संबंध में उनके द्वारा सुझाए गए नुस्खे कई समस्याओं का आवश्यकता से अधिक आसान कर दिए । हालांकि भाषा एवं लिपि के परिवर्तन के पीछे उन्होंने आम जनता के कल्याण को सामने रखने की कोशिश की, लेकिन आलोचकों का कहना है कि वे वकील थे और इस अवधि तक अंग्रेज शासकों द्वारा स्थापित न्याय व्यवस्था के परिवर्तन आरंभ हो चुके थे । मालवीयजी ने उच्च मध्यम वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर अपनी बात रखी । उनके सामने सरकारी नौकरी एवं न्याय व्यवस्था से जुड़े लोगों का कल्याण ही सामने था । उन्होंने इस बात पर न तो जोर दिया और न ही इस बात को रेखांकित किया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा का मुख्य माध्यम हिन्दी भाषा ही है और इसका उपयोग समाज द्वारा कई क्षेत्रों में होता है । उदाहरण के लिए व्यापारिक खाता का संचालन, जमीन के दस्तावेज लेखन, निजी पत्राचार आदि ऐसे कार्य हैं जिनका संबंध सीधे तौर से समाज के सभी वर्गों द्वारा होता था । मालवीयजी ने इस ओर पूरा ध्यान नहीं दिया कि समाज के मुट्ठी भर लोगों का संबंध ही सरकारी नौकरी से होता था और इसके लिए कम ही लोग आशा रखते थे, तैयारी करते थे कि सरकारी नौकरी मिले। अधिकतर लोगों का जुड़ाव इससे नहीं था। इस समय में उत्तर पश्चिम प्रांत और अवध में सबसे अधिक प्रचलन कैथी का ही था और इसका उल्लेख मालवीयजी ने नहीं किया ।"

हिन्दू वर्ग में से कई जातियां विशेषकर कायस्थ और कश्मीरी ब्राह्मणों ने न सिर्फ खरी बोली, फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू में शिक्षा हासिल किया और इसमें निपुणता भी हासिल की । इसमें लेशमात्र भी यह भावना नहीं थी कि वे हिन्दू होकर भी फारसी लिपि में उर्दू सीखकर हिन्दुत्व में कमी कर रहे हैं । अर्थात् उस समय यह सोच विकसित नहीं हुई थी कि उर्दू मुसलमानों की ही भाषा है । इनमें से कई लेखक डा० बैलेंटाईन के शिष्य थे और कई फोर्ट विलियम संस्थान से संबंध रखते थे । इन छात्रों एवं लेखकों द्वारा समाज में प्रचलित कई बोलियों में से शब्दों को लेकर प्रयोग करने का अभ्यास था।हिन्दू वर्ग के बहुत से छात्र फारसी माध्यम के विद्यालयों से वर्ष 1840 ई० में शिक्षा प्राप्त किए थे । 1847 में डा० बैलेंटाईन और इसके बाद के छात्र तो इसमें भी कोई गलती नहीं देखते थे कि हिन्दी और उर्दू को मिला दिया गया । बहुत से छात्र मध्य विद्यालय में उर्दू माध्यम से पढ़ाई किए थे । सरकारी सेवा में उर्दू शिक्षा प्राप्त बहुतेरे हिन्दू थे । बाद के दिनों में हिन्दी - उर्दू और हिन्दू-मुसलमान के बीच की दरारें बढ़ने लगीं । श्याम सुन्दर दास ने अपनी जीवनी में कायस्थ और कश्मीरी ब्राह्मणों की आलोचना इस बात को लेकर की है कि वे हिन्दू होने के बावजूद उर्दू सीखते थे, उर्दू माध्यम में पढ़ना पसंद करते थे, सरकारी सेवा में भी उर्दू के कारण नौकरी भी करते थे । उर्दू के कई लेखक तो आज के दिन भी उतने ही लोकप्रिय हैं । प्रसिद्ध नामों में देवकी नंदन खत्री और प्रेमचन्द थे । देवकी नंदन खत्री हालांकि नागरी लिपि में लिखते थे परन्तु लिखने की शैली उर्दू के काफी निकट थी । प्रेमचंद तो उर्दू लेखक के रूप में ही अपना जीवन आरंभ किए, बाद में वे हिन्दी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए ।"

यहां यह जिज्ञासा भी स्वाभाविक ही है कि नागरी प्रचारिणी सभा अथवा हिन्दी के विकास में लगे व्यक्ति एवं संस्थाओं ने पूर्व से चली आ रही और लोकप्रिय लिपि और भाषा पर जोर क्यों नहीं दिया । प्रचारिणी सभा ने कैथी से विमुखता क्यों बनाए रखा । सभा ने कैथी के पूर्ण अस्तित्व की तरफ ध्यान क्यों नहीं दिया ? जहां एक तरफ नागरी लिपि में लिखने और पढ़ने की कठिनाईयों के कारण यह लोकप्रिय नहीं था और इसे जाननेवालों की संख्या बहुत कम थी, दूसरी ओर समाज में ऐसे लोगों की भरमार थी जो कैथी जानते थे । नागरी लिपि में रचित देवकी नंदन खत्री एवं अन्य लोकप्रिय लेखक की रचना की ओर सभा का ध्यान क्यों नहीं गया । इतिहासकार का कहना है कि इसका सबसे बड़ा कारण इसकी जटिलता, बोझिलता, अनावश्यक शुद्धता, संस्कृतात्मकता भी था । जैसा पहले बताया गया इस शुद्ध ता की जड़ में हिन्दी को उर्दू से अलग करना था । शुद्धता इस रूप में थी कि हिन्दी में से उर्दू और फारसी शब्द को अलग कर दिया जाए और उसके स्थान पर संस्कृत शब्द को प्रतिस्थापित किया जाए और ऐसा कर देने से हिन्दी कुछ अलग हो जाएगी । इसी प्रकार यह भी माना गया कि कैथी से अधिक शुद्ध नागरी है क्योंकि जिस प्रकार का संबंध उर्दू या हिन्दुस्तानी से है, ऐसा नागरी का नहीं है । ऐसा नहीं है कि यह भावना उर्दू बोलनेवालों की नहीं थी । उनमें भी 'साफ उर्दू' बोलने की प्रवृत्ति का विकास हुआ और इस प्रवृत्ति में वे हिन्दी शब्दों को छोड़कर इससे अलग उर्दू तैयार करने लगे ।'[21]

लेकिन इतिहासकारों का कहना है कि संस्कृतात्मकता या शुद्धता कोई नई अवधारणा नहीं थी और इसके लिए उदाहरण देना कतई उचित नहीं था । नाही इसे हिन्दू-मुस्लिम अथवा हिन्दू-उर्दू के चश्मा से देखा जाना चाहिए । संस्कृत शब्दों के प्रयोग कर देने से या अधिक कर देने से लोगों को यह लगता था कि भाषा में शुद्धता आ गयी या अधिक आ गई । यह प्रवृत्ति हिन्दी, उर्दू या अन्य सदृश भाषा में थी। उर्दू में फारसी शब्दों के अधिक प्रयोग कर देने से उसमें शुद्धता की मात्रा आ जाती थी । इसके बाद भाषा और वर्ग का भी समन्वय था । उच्च वर्ग के हिन्दू और मुसलमान जिस भाषा का प्रयोग करते थे, उसमें 'शुद्धता' की आकांक्षा अधिक रहती थी और जैसे-जैसे वर्ग-वर्ण बदलता, शुद्धता घटती जाती । इस तरह सामाजिक उच्चोच्च परंपरा अथवा पदानुक्रम के प्रयोगानुसार भाषा का स्वरूप बदलता। समाज में ब्राह्मण उच्च वर्ग में पदासीन थे और संस्कृत भाषा का अधिक प्रयोग करते थे। समाज में उच्च वर्ग के आकांक्षी संस्कृत शब्दों के प्रयोग पर ध्यान देते थे ।

भारतीय इतिहासकार, अंग्रेज सरकार की कोई भी नीति निर्णय जिसका समाज पर व्यापक असर पड़ता है, को फूट डालो और राज करो के चश्मे से देखते हैं । इतिहासकारों की यह दृष्टि बिना आधार के नहीं है । अंग्रेज सरकार की भाषा नीति का मूल्यांकन भी कुछ इसी तरीके से हुआ है । लेकिन जब हम अंग्रेज सरकार की भाषा और लिपि संबंधी नीति का गहन अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि अंग्रेज प्रशासक की तत्कालीन नीति कोई वैज्ञानिक सूचना विधि पर आधारित नहीं थी । हाकिमों द्वारा इस प्रकार के निर्णय क्यों लिए गए, इसके पीछे सोच का ठोस आधार क्या रहा होगा, आज भी उलझन में डालता है और इस पर गहन शोध की आवश्यकता है । हिन्दी और उर्दू के संबंध में उत्तर प्रदेश के संदर्भ में लिया गया

निर्णय भ्रामक स्थिति से कम नहीं है । इसी निर्णय से हिन्दू और मुसलमान के बीच के संबंध में खटास उत्पन्न होना प्रारंभ हो गया जबकि पूर्व की स्थिति ऐसी नहीं थी । खासकर वर्ष 1900 में अंग्रेज सरकार की भाषा संबंधी घोषणा इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण है । अंग्रेज शासक मैकडोनेल बोलचाल हिन्दी और लिखने की हिन्द शैली को लेकर काफी भ्रमित थे और उनके द्वारा लिए गए निर्णय अपने ही निर्णय से इतर होते थे । शोर महोदय ने नागरी के संबंध में सौगोर और नेरबुदा क्षेत्र में जो निर्णय लिया, यह भी सब लोगों को अचरज में डाला । कैथी लिपि के बारे में नेसफिल्ड महोदय का अवध क्षेत्र में लिया गया निर्णय कभी भी निर्णयों की श्रेणी में नहीं आ सकता, ऐसा अच्छे प्रशासनिक आलोचकों का मत है । कैथी के संबंध में लिए गए निर्णय से भारतीयों का एक दूसरे पर से विश्वास कम हुआ । विश्लेषकों ने ऐसे मत भी प्रकट किए हैं कि प्रशासकीय निर्णयों के पीछे हाकिमों के दिमागों में भ्रम की स्थितियां, स्थानीय सतर पर समन्वय का अभाव, एक दूसरे के विरुद्ध वैमनस्य की स्थिति और सबसे बढ़कर हाकिमों की अज्ञानता का कारण था ।[22]

वर्ष 1895 में सर एंटोनी मैकडोनेल लेफ्टिनेंट गवर्नर बनकर भारत आए । मैकडोनेल ने बिहार में नागरी के संबंध में ठोस निर्णय लिया और इसे शासन एवं न्यायालय की लिपि बना दी गई । उनके द्वारा लिए गए निर्णय से उत्तर प्रदेश के लोगों में आशा जगी । मैकडोनेल बिहार -बनारस के दौरे पर आए और नागरी प्रचारिणी सभा के सदस्यों ने बिना समय गंवाए उनसे संबोधन की अपील की । मैकडोनेल ने इस बात में गहरी रुचि दिखाई कि उर्दू के बदले हिन्दी को शासकीय भाषा एवं न्यायालय की लिपि बनाई जाए, परन्तु इसके लिए उन्होंने किसी भी समय सीमा का निर्धारण करने से इनकार किया ।[23]

1896-97 और 1898 में प्रक्षेत्र में आई भीषण अकाल और सूखा ने मैकडोनेल को उलझाए रखा और वर्ष 1898 में नागरी प्रचारिणी सभा के प्रतिनिधिगण पुनः मैकडोनेल से मिले । इस प्रतिनिधिमंडल में प्रायः सभी लोग हिन्दू ही थे । ये अपने हाथ में जो ज्ञापन ले गए थे उसमें हजारों हस्ताक्षर भी थे । प्रतिनिधिमंडल से मिलने के बाद वर्ष 1899 में मैकडोनेल ने प्रक्रिया की शुरूआत के लिए आदेश जारी कर दिया जिसका अंतिम हश्र नागरी लिपि और हिन्दी भाषा को शासकीय एवं न्यायालय में व्यवहार का दर्जा प्राप्त हो गया ।

वर्ष 1900 में नागरी लिपि से संबंधित निर्णय

वर्ष 1900 में लेफ्टिनेंट गवर्नर ने एक आदेश निकाला जिसका भावार्थ यह था कि नागरी लिपि को उर्दू के बराबर प्रतिष्ठा दी गई । मैकडोनेल ने इस संबंध में राज्य के प्रांतीय राजस्व बोर्ड, उत्तर पश्चिमी प्रांत के उच्च न्यायालय और अवध के न्यायिक आयुक्त से सलाह लिया और आदेश जारी कर दिया। लेकिन बाद में जब भारत सरकार से सलाह किया गया तो इसका परिणाम यह हुआ कि एक महीना के बाद पुनः दूसरा आदेश निकालना पड़ा । वर्ष 1899 में प्रांतीय राजस्व बोर्ड से लेफ्टिनेंट गवर्नर ने सलाह मांगी और सूचित किया कि पूर्व प्रमंडल अर्थात् गोरखपुर, बनारस और इलाहाबाद में नागरी लिपि को लागू किया जाए । मई, 1990 में भारत सरकार को लिखे गए पत्र में जिक्र किया गया कि इस क्षेत्र के निवासियों की मुख्य

भाषा हिन्दी है और अवध के संपूर्ण क्षेत्र, गोरखपुर, बनारस, इलाहाबाद, आगरा और कुमायुं प्रमंडलों में हिन्दी बोली जाती है और यह जनभाषा है । मेरठ और रोहिलाखंड में भी उर्दू के अपेक्षा हिन्दी अधिक बोली जाती है । लेकिन इन निर्णयों को लेकर भ्रम की स्थिति भी पैदा हुई । फरवरी, 1900 में उत्तर पश्चिम प्रांत के उच्च न्यायालय को भेजे गए अपने पत्र में लेफ्टिनेंट गवर्नर ने कहा कि हिन्दी एक भाषा है जबकि अप्रैल में कहा गया कि हिन्दी एक अक्षर है । इसी तरह का संशय भारत सरकार को मई 1990 में भेजे गए पत्र के बाद भी हुआ जिसमें हिन्दी को कभी भाषा तो कभी लिपि बतलाया गया ।[24]

भारत सरकार के भारत कार्यालय के न्यायिक और लोक विभाग के सेक्रेटरी लायल साहब थे और 4 मई को संयुक्त प्रांत द्वारा भेजे गए पत्र को लेकर उन्हें उलझन हुई । उलझन का विषय उर्दू और हिन्दी के शब्दों में भेद को लेकर हुआ । उलझन भाषा और लिपि के भावार्थ को लेकर था । भारत सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस मामले में राज्य सरकार से अधिक भ्रामक स्थिति उसके सम्मुख थी और कम से कम इस मामले में शब्दों के प्रयोग से होनेवाली गड़बड़ी से वह भली भाँति अवगत था और आगे नियम-3 में वर्णित शब्द नागरी और फारसी के स्थान पर हिन्दी और उर्दू शब्द को प्रतिस्थापित किया गया । हालांकि मैकडोनेल ने अपने पत्र में स्पष्ट लिखा था कि वह सिर्फ लिपि के संबंध में नयी व्यवस्था लागू करना चाहता है, भाषा के संबंध में नहीं । परन्तु भारत सरकार द्वारा लिए गए निर्णय भाषा को अधिक प्रभावित करनेवाले थे । ऐसा लगता है कि भारत सरकार के पदाधिकारीगण इस मामले में पूर्वाग्रह से ग्रसित थे ।

इतिहासकारों द्वारा इस संपूर्ण मामले में राजस्व बोर्ड का अध्ययन एवं दिए गए सलाह को बिलकुल तर्कसंगत और जमीनी तथ्यों के आधार पर बताया गया है । अपने प्रतिवेदन में राजस्व बोर्ड ने स्पष्ट किया कि इस भौगोलिक क्षेत्र में कोई भी हिन्दी बोलनेवाला नहीं है । यहां खरी बोली के दो रूप हैं - एक जिसे पंडितों की हिन्दी कही जाती है और दूसरा फारसी युक्त उर्दू है । डी.टी.रॉबर्ट्स राजस्व बोर्ड के कनीय सदस्य थे परन्तु उन्होंने विषय वस्तु की सबसे अच्छी समझ होने का प्रमाण प्रस्तुत किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पूरे प्रांत में कैथी लिपि का उपयोग नागरी लिपि के समान होता है और पूर्वी भाग के जिलों में कैथी लिपि में सामान्य हस्तलिखित दस्तावेज नागरी से बहुत अधिक मिलते हैं और इन जिलों में कैथी का प्रचलन नागरी से बहुत अधिक है । रावर्ट साहब अपने उद्गार बड़े ही स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया और लिखा कि सरकार द्वारा राजस्व बोर्ड के समक्ष नागरी और कैथी के संबंध में विचार करने के लिए प्रस्ताव दिए गए हैं । यदि कैथी के बदले नागरी लिपि को शासन और न्यायालय की लिपि बनाई जाती है तो उसका कोई फलाफल निकलनेवाला नहीं है क्योंकि नागरी लिपि में अभ्यास करनेवालों को न्यायालय और कार्यालय से संबंधित कागजात और दस्तावेज तैयार करने का कोई अनुभव नहीं है । यह अनुभव सिर्फ कैथी लिखनेवालों का ही है ।

लिपि परिवर्तन और भाषा परिवर्तन के पीछे सरकार का मुख्य उद्देश्य है कि स्थानीय जनता द्वारा लिखी जानेवाली लिपि और भाषा का प्रयोग शासन और न्यायालय में हो ताकि जनता

भलीभांति, आसानी से तथ्यों से परिचित हो सकें। यदि वास्तव में सरकार की यही मंशा है तो कम से कम पूर्वी जिलों में निश्चित रूप से नागरी के बदले कैथी को मिली मान्यता बरकरार रहनी चाहिए।

लेकिन उत्तर पश्चिम प्रांत और अवध में डी.टी.रॉबर्ट के विचारों और जमीनी हकीकत का कोई ध्यान नहीं रखा गया। अप्रैल 1900 में नए आदेश जारी कर दिए गए और उसमें कैथी को कोई स्थान नहीं दिया गया। सरकार का यह निर्णय सरकारी अमलों से जुड़े लोग और हिन्दी-नागरी समर्थकों के बीच परस्पर विरोध की स्थिति पैदा कर दी।

सरकारी कर्मचारी, विधि विशेषज्ञ, आवेदन लेखक और इस तरह के पेशों से जुड़े लोगों का एक बड़ा समूह था जिनका हित फारसी (उर्दू) लिपि के ज्ञान पर ही आधारित था। परन्तु नागरी लिपि के जाननेवालों का संबंध इन पेशों से नहीं था। अत: फारसी (उर्दू) जाननेवाले हमेशा यही चाहते रहे कि शासन और न्यायालय की लिपि फारसी (उर्दू) बनी रहे। परन्तु सरकार द्वारा वर्ष 1900 में लिए गए निर्णय इन वर्गों के हितों के एकदम विरुद्ध थे परन्तु इस पर कभी भी विचार नहीं किया गया। कैथी लिपि को अंगीकार नहीं किए जाने के बाद समाज ने एक बड़े वर्ग को इस पेशे से अलग कर दिया। क्योंकि उर्दू और कैथी लिपि जाननेवाले ही मुख्य रूप से इन पेशों से जुड़े हुए थे।[25]

इतिहासकारों का मानना है कि सरकार द्वारा भाषा एवं लिपि से संबंधित निर्णय तथ्यों के आधार पर न होकर एक प्रकार से अंग्रेज हाकिमों द्वारा लिए गए गलत निर्णय थे। इसका खामियाजा भारत को बहुत अधिक भुगतना पड़ा। भाषा एवं लिपि संबंधी निर्णयों का असर समाज में व्यापक रूप से पड़ता है, इसको नकारने वाले इतिहासकारों की आज कमी है। यह सिर्फ भारत की कहानी नहीं है बल्कि संपूर्ण दक्षिण एशिया की यही कहानी है। वर्ष 1947 में पाकिस्तान का जन्म, वर्ष 1955 में भाषा के आधार पर नए राज्यों का गठन, वर्ष 1965 में भारत के दक्षिणी राज्यों में हिन्दी का प्रचंड विरोध, वर्ष 1966 में पंजाब का गठन, वर्ष 1971 में बांग्लादेश का निर्माण हाल के वर्षों की घटना है, जिसका आधार सरकार द्वारा भाषा एवं लिपि से संबंधित निर्णय है।[26]

वर्ष 1830 में उच्च प्रशासनिक व्यवस्था की लिपि फारसी के बदले अंग्रेजी कर दी गयी और इसकी पढ़ाई भी आरंभ हो गई। वर्ष 1870 में केन्द्रीय प्रांत में उर्दू के बदले हिन्दी आ गई थी और वर्ष 1880 में बिहार में ऐसा किया गया। वर्ष 1900 में उत्तरी पश्चिम प्रांत और अवध में उर्दू का स्थान हिन्दी ने ले लिया।[27]

बंगाल के सदर कोर्ट द्वारा यह तथ्य प्रकाश में लाया गया कि चूंकि बांग्ला भाषा में कई उप भाषाएं हैं इसलिए न्यायालय की भाषा बनाने में इसे बहुत दिक्कत हो सकती है क्योंकि ऐसी स्थिति में न्यायालय को प्रत्येक उप भाषा के लिए अलग-अलग लोगों की नियुक्ति करनी पड़ सकती है। दूसरी बात यह भी सामने लायी गयी कि बांग्ला या हिन्दी में न्यायिक कार्यवाही आरंभ करने में फारसी की अपेक्षा कम से कम तीन-गुना अधिक समय लग सकता है। सदर कोर्ट की अवधारणा यह थी कि हिन्दी या बांग्ला बहुत धीमी गति से लिखी जानेवाली

लिपि है । उत्तर पश्चिम राज्यों के सदर कोर्ट द्वारा भी कुछ इस प्रकार की बातों की ही पुनरावृत्ति की गयी । न्यायालयों की यह समझ थी कि हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि की कई उपशाखाएं हैं और इसके स्वरूप में परिवर्तन देखने को मिलते हैं इसलिए यह न्यायालय की भाषा का ओहदा पाने लायक नहीं है । न्यायालयों ने स्पष्ट रूप से टिप्पणी की कि हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि के इन रूपों में परिवर्तन एक राज्य में एवं यहां तक कि एक जिला में देखने को मिलते हैं । ऐसी स्थिति में न्यायालय की भाषा के लिए यह उपयुक्त बिलकुल नहीं है । नागरी लिपि के बारे में भी यही कहा गया कि यह एकदम धीमी गति से लिखी जानेवाली लिपि है और इस लिपि का यह सबसे बड़ा अवगुण है । इसे पढ़ने में भी काफी कठिनाई होती है और अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है । नागरी लिपि के अवगुणों की व्याख्या करते हुए आगे कहा गया कि यह टेढ़ी-मेढ़ी ढंग से लिखी जानेवाली है । इसके कुछ अक्षरों में असमानता दिखाई देती है और इसके स्वरूपों में जगह-जगह पर परिवर्तन भी दिखाई देते हैं । नागरी के अन्तर्गत कैथी के बारे में कुछ अधिक तल्ख टिप्पणी की गयी कि आम जनता कैथी को बहुत ही बेतरतीब ढंग से लिखती है, पढ़ने में काफी कठिनाई होती है । यहां तक भी कहा गया कि दो व्यक्ति (हाथ) इस बात पर एकमत नहीं हो सकते कि कैथी में क्या लिखी गयी है ।[28]

सरकार की भाषा नीति : कैथी की कई बहनें थीं - इनमें महाजनी, मुरिया और सर्राफी प्रमुख थी । प्रमुख रूप से व्यापारी वर्ग इस लिपि का अधिक से अधिक उपयोग करते थे क्योंकि इस लिपि की अक्षरें काफी छोटी, लिखने में सुविधाजनक, त्वरित गति से लिखी जानेवाली और व्याकरणीय परेशानियों से दूर थी । यही कारण था कि यह लिपि आम जनता में सबसे अधिक लोकप्रिय थी ।[29]

कैथी की अवनति का बीज वर्ष 1847 में पड़ चुका था । इस वर्ष उत्तर पश्चिम प्रांत सरकार द्वारा एक निर्णय लिया गया जिसके अनुसार कैथी को छोड़कर नागरी लिपि को आगरा जिला के ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा देने की सरकारी लिपि के रूप में मान्यता दी गयी । वर्ष 1852 में राजस्व के सदर बोर्ड द्वारा यह निर्णय लिया गया कि ग्रामीणों द्वारा वार्षिक कागजात हिन्दी में तैयार किए जाएंगे । ज्ञात हो कि इससे पहले ग्रामीण शिक्षा और राजस्व की लिपि कैथी ही थी ।[30]

उत्तर पश्चिम प्रांत का शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन (वर्ष 1856-57, 1857-58) (पृष्ठ - 32-33)

सरकार की लिपि नीति का व्यापक असर समाज की शिक्षा व्यवस्था पर पड़ा । इसका असर सीधे तौर पर राजस्व से संबंधित कागजात तैयार करने की व्यवस्था पर भी पड़ा । ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्व से स्थापित परंपरा के अनुसार भूमि लगान या राजस्व से संबंधित दस्तावेजों को तैयार की परिपाटी पर विशेष रूप से पड़ा । उत्तर पश्चिम प्रांत एवं अवध तथा बिहार में बंदोबस्ती प्रणाली में भिन्नता थी, अतएव दोनों राज्यों के ग्रामीण भूमि दस्तावेजों की परिपाटी अलग-अलग रही । शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन में इन तथ्यों की व्यापक रूप से समीक्षा की

गयी । बंगाल प्रोविन्सियल समिति का प्रतिवेदन कलकत्ता से वर्ष 1884 में प्रकाशित हुआ और इसके पृष्ठ संख्या 46-47 में इसकी विशद व्याख्या की गयी ।

बिहार की प्राथमिक शिक्षा और कैथी

इस अवधि में बिहार में ग्रामीण पाठशालाओं की संख्या बहुत अधिक थी और इन पाठशालाओं में छात्रों को कैथी लिपि ही पढ़ाई जाती थी । पाठ्यपुस्तक भी कैथी लिपि में ही होते थे । इन पाठशालाओं पर सरकार का सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं था और इस कारण सीमित अर्थों में ये पाठशालाएं ग्रामीणों के सहयोग से संचालित होते थे । राज्य का सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं होने के कारण किन विषयों की पढ़ाई होगी, इसका निर्धारण स्थानीय स्तर पर ही होता था । कैथी की पढ़ाई अनिवार्य होने के पीछे कारण यह था कि उस समय सारे काम-काज कैथी में ही होते थे और इसका कोई विकल्प भी नहीं था । कैथी में जनसाधारण के प्रयुक्त होनेवाले सभी कागजात थे और कैथी पढ़कर समाज में छोटे स्तर पर ही सही, लेकिन काम-काज मिलने की संभावना होती थी । सरकार की शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन आने के बाद बिहार के ग्रामीण पाठशालाओं में कैथी की पढ़ाई का असर अधिक बढ़ा क्योंकि इस प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया गया था कि स्थानीय जनता की सुविधा के अनुसार ग्रामीण पाठशालाओं में पढ़ाई होनी चाहिए । कैथी के अतिरिक्त फारसी लिपि समाज में प्रचलित थी परन्तु फारसी लिपि के संबंध में यही बात सामने आती थी कि इसके जानकार हिन्दू एवं मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग के लोग ही होते थे । परन्तु कैथी की मान्यता, स्वीकार्यता और सर्वप्रियता तो गांव-गांव, जन-जन में थी । शिक्षा प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया कि बिहार में कैथी तत्कालीन समाज की सबसे अधिक लोकप्रिय लिपि है । प्रतिवेदन में यह भी स्पष्ट किया गया कि कैथी सिर्फ बिहार में ही लोकप्रिय नहीं है बल्कि उत्तर पश्चिम राज्य और अवध में भी इसकी लोकप्रियता सबसे अधिक है और इस कारण प्राथमिक शिक्षा के लिए कैथी को लिपि बनाने के अलावे कोई विकल्प भी नहीं है।

उत्तर भारत में लिखने का कार्य एक जाति कायस्थ द्वारा विशेष रूप से किया जाता था । इस जाति द्वारा लिखने के लिए "कैथी" अक्षरों का प्रयोग किया गया । कैथी देवनागरी की तरह संपूर्ण लिपि नहीं है और इस लिपि में कुछ अक्षरों की और आवश्यकता महसूस होती है । परन्तु इस लिपि की आवश्यकता काफी अधिक है । ठीक उसी प्रकार जैसे अंग्रेजी में हाथ से लिखे जानेवाले और अंग्रेजी में छापे जानेवाले अक्षरों के हैं । इस लिपि का प्रयोग पूरे उत्तर भारत में गुजरात के समुद्री किनारा से लेकर कोसी नदी के तट तक इस लिपि का प्रयोग किया जाता था । इस लिपि के कुछ स्वरूपों में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन भी दिखाई देता है । यह परिवर्तन भौगोलिक क्षेत्र विशेष में लिपि के प्रचलन और व्यक्ति विशेष द्वारा प्रयोग किए जानेवाले अक्षर पर निर्भर करता है । हालांकि कैथी मूल रूप से हाथ से लिखी जानेवाली लिपि है, परन्तु गुजरात और बिहार में प्रिंटिंग के लिए फौंट का विकास किया गया और इस लिपि की प्रतिष्ठा भी बढ़ी । बिहार में कैथी लिपि प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों को पढ़ाई जाती थी जहां देवनागरी की शिक्षा अनावश्यक रूप से विलासिता समझी जाती थी । गुजरात

में इस लिपि को राष्ट्रीय लिपि के स्तर तक ले जाया गया । हालांकि गुजरात में कैथी लिपि में छपे किताबों की संख्या बहुत अधिक है, फिर भी इसका प्रचलन काफी कम हो गया है और वर्तमान पीढ़ी ही इस लिपि से परिचित है । गुजरात में बहुत पुरानी किताबें देवनागरी लिपि में ही उपलब्ध है । कैथी में अक्षर बहुत साधारण तरीके से लिखे जाते हैं और संयुक्त अक्षरों की लिखावट भी आसान होती है । हालांकि संयुक्त अक्षर इस लिपि में बहुत ही कम है । बिहार में क्षेत्रीयता के आधार पर कैथी लिखी जाती है और मुख्यत: मैथिली, मगही और भोजपुरी शैली में यह लिखी जाती है ।[31]

संदर्भ

1. क्रिस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्विज टू स्क्रिप्टस, पृष्ठ-65
2. वही (पृष्ठ-32-33)
3. वही
4. वही
5. वही पृष्ठ-88
6. वही
7. वही-पृष्ठ-97
8. वही-पृष्ठ-130
9. पॉल ब्रास, लैंग्विज, रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स इन नॉर्थ इंडिया
10. क्रिस्टोफर आर किंग, वन लैंग्विज टू स्क्रिप्टस पृष्ठ-188
11. वही, पृष्ठ-198
12. वही, पृष्ठ-198
13. वही, पृष्ठ-15
14. वही, पृष्ठ-18
15. वही, पृष्ठ-23
16. वही, पृष्ठ-48
17. वही, पृष्ठ-59
18. वही, पृष्ठ-177
19. वही, पृष्ठ-150-151
20. वही, पृष्ठ-176
21. वही, पृष्ठ-181
22. वही, पृष्ठ-185
23. वही, पृष्ठ-148
24. वही, पृष्ठ-153-154
25. वही पृष्ठ-155
26. वही पृष्ठ-1
27. वही पृष्ठ-53
28. वही, पृष्ठ-55
29. वही, पृष्ठ-65
30. वही, पृष्ठ-65
31. जी. ए0. ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया भॉल्युम-5, पार्ट-2

कैथी का अवसान

प्रसिद्ध लेखक क्रिस्टोफर किंग ने अपनी किताब ' वन लैंग्वेज टू स्क्रिप्ट' में में अध्याय उन्नीसवीं सदी में 'उत्तर भारत में हिन्दी आंदोलन' अध्याय में एक बहुत ही दिलचस्प हिन्दी नाटक का जिक्र किया है जिसका मंचन उन्नीसवीं सदी के अंत में हुआ। नाटक में 'महारानी देवनागरी' अपने ऊपर हुए अन्याय के बारे में फरियाद करती हैं। 'महारानी देवनागरी' का आरोप है कि "फारसी" की बेटी "बेगम उर्दू" उनको अपने अधिकार से वंचित कर रही है। नाटक के बारे में लेखक की कल्पना है कि नाटक में एक पात्र "राजकुमारी कैथी" का भी होना चाहिए। राजकुमारी कैथी के माता का नाम देवनागरी है और राजकुमारी कैथी अपनी मां महारानी देवनागरी के बदले में राज सिंहासन पर बैठने का कई बार असफल प्रयत्न कर चुकी है।[1]

कैथी का विरोध का बीज

कैथी की स्थिति के बारे में सरकारी नीति में कई प्रकार की असंगति रही है। उत्तर पश्चिमी प्रांत और अवध में सरकारी पदाधिकारी द्वारा कैथी का कई बार विरोध किया गया। हालांकि यह विरोध अवध में कभी बहुत तीव्र था तो कभी थोड़ा नरम। एक ही बार विरोध नहीं किया गया। लेकिन बिहार में ऐसी स्थिति नहीं रही। अंग्रेज अधिकारी बिहार में इसका हमेशा समर्थन करते रहे। हिन्दी के समर्थकों में नागरी लिपि को लेकर थोड़ी खटास ही रही। हालांकि हमेशा नागरी की 'बेटी' के रूप में कैथी का संबोधन होता रहा, परन्तु इस संबोधन में आदर की कमी थी, बल्कि कैथी के स्वरूप को नीचा दिखाने का भाव इसमें था। बाद के दिनों में 'कैथी' अपनी "मां" के हाथों परास्त हुई, परन्तु इस हार का फलाफल क्या निकला ? कुछ निकला भी या नहीं, इस बारे में अभी भी शक ही है। हिन्दी लिखने के

लिए जिन अक्षरों को नागरी-कैथी लिपि से लिया गया, उन्हीं अक्षरों को लेकर विवाद उत्पन्न किया गया था और कहा गया कि इन अक्षरों के कारण ही कैथी लिपि अपने आप में संपूर्ण नहीं है ।

उत्तर पश्चिम प्रांत में कैथी लिपि का सरकार द्वारा विरोध का बीज वर्ष 1847 में ही पड़ चुकी थी । इसी वर्ष कैथी के बदले नागरी लिपि को आगरा जिला के ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाया गया । वर्ष 1852 में राजस्व के सदर बोर्ड ने आदेश जारी किया कि नागरी लिपि का प्रयोग हिन्दी में लिखे जानेवाले सभी प्रकार के ग्रामीण दस्तावेज में किया जाए । वर्ष 1870 और 1880 का शिक्षा प्रतिवेदन के देखने से स्पष्ट होता है कि सरकार का यह आदेश भी क्रियान्वित हो चुका था कि वैसे किसी भी पटवारी की नियुक्ति नहीं करनी है जो 'सिर्फ' कैथी ही जानते हों - अर्थात् नागरी-हिन्दी का ज्ञान नहीं रखते हों । इसका व्यापक असर हुआ कि सरकारी विद्यालयों से कैथी और इसके अन्य हस्तलिखित लिपि दूर होते चले गए और विद्यालयों में इसकी शिक्षा बंद हो गई । वर्ष 1900 में जब तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंटोनी मैकड्वेल ने राजकीय लिपि के संबंध में आदेश जारी किया तो उसे अपने ही राजस्व सदर बोर्ड के प्रस्ताव को दरकिनार करना पड़ा जिसमें विस्तार से चर्चा की गई थी कि कैथी किस प्रकार पूरे सूबे में व्यवहार की जानेवाली लिपि है ।

अवध में सरकार की नीति अधिक असंगत थी । वर्ष 1871 में अवध में जन शिक्षा निदेशक के पद पर कोलिन ब्रॉनिंग्स पदस्थापित थे । उन्होंने आदेश दिया कि ग्रामीण विद्यालयों में वर्ग दो तक, कस्बाई विद्यालयों में वर्ग तीन तक और जिला स्कूल में छठे वर्ग तक कैथी की पढ़ाई नहीं होगी । उन्होंने यह भी आदेश निकाला कि यदि कोई अभिभावक अपने बच्चों को कैथी सीखना चाहते हैं तो वे ऐसा कर सकते हैं परन्तु इसके लिए उन्हें अलग से फीस देनी होगी। क्रिस्टोफर किंग ने लिखा है कि ब्रॉउनिंग की यह इच्छा नहीं थी कि विद्यालयों में कैथी की पढ़ाई नहीं हो, यह बन्द हो जाए । बल्कि वे छात्रों को इस ओर प्रेरित करना चाह रहे थे जिससे कि छात्र शिक्षा का अर्थ सिर्फ कैथी सीखना और पहाड़ा सीखना तक ही न समझें।

वर्ष 1975 में, ब्रॉउनिंग के बाद जे.सी.नेसफिल्ड जन शिक्षा के निदेशक बने । उन्होंने पुनः कैथी को अवध के प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में स्थापित करने का प्रयास किया । उन्होंने आदेश दिया कि वे शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना चाहते हैं और उन्होंने यह भी आदेश दिया कि कैथी लिखना और कैथी में गणित की पढ़ाई तुरंत आरंभ होनी चाहिए । इसके साथ-साथ नागरी की पढ़ाई भी होनी चाहिए । उन्होंने कैथी की लिखावट में सुधार के भी प्रयत्न किए और इस सुधरे हुए लिपि को स्थापित करने का आदेश दिया । ऐसा करने से पूर्व जे.सी.नेसफिल्ड ने सूबे के प्रत्येक तहसील से कैथी के लिखावट के नमूनों को एकत्र करवाया और भारतीय शिक्षा सेवा के एक पदाधिकारी को इस आधार पर एक परिमार्जित कैथी लिपि विकसित करने का आदेश भी दिया । नेसफिल्ड साहब द्वारा कैथी के विकास में किए गए कार्य आज भी प्रेरणास्त्रोत हैं । शिक्षा सेवा के इस भारतीय पदाधिकारी द्वारा कैथी के लिखाई के स्वरूप को परिमार्जित किया गया और सरकार ने यह भी आदेश दिया कि इस परिमार्जित कैथी की पढ़ाई राज्य के सभी विद्यालयों में आरंभ की जाए और ऐसे छात्रों

को कैथी सीखने की प्रेरणा दी जाए, सुविधा दी जाए जो फारसी लिपि को छोड़ना चाहते हैं। वर्ष 1881 से पूर्व इस परिमार्जित लिपि को आधार बनाकर कैथी मे छात्रों के लिए पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ हुआ। प्रथमतः वाणिज्यिक पत्राचार संग्रह कैथी में प्रकाशित हुआ और 'पटवारी' की परीक्षा लेने के लिए जो प्रश्न पत्र तैयार किए गए उनमें इन चीजों का समावेश भी किया गया। प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक के लिए जो परीक्षा होती थी उसके लिए तीन विषयों की परीक्षा देनी अनिवार्य की गयी – कैथी, नागरी और फारसी।

कैथी के पक्ष में अंग्रेज हाकिम

जे.सी.नेसफिल्ड ने अपने इस निर्णय के बारे में पूरी व्याख्या की । उन्होंने स्पष्ट लिखा कि अवध में कोई भी व्यक्तिगत, व्यापारिक अथवा निजी पत्र, अन्य दस्तावेज नागरी लिपि में नहीं लिखे जाते। यहां तक कि ब्राह्मण समुदाय के लोग भी व्यापारिक पत्र-व्यवहार एवं अन्य टिप्पणी कैथी में ही करते हैं। नागरी लिपि में एक ही कार्य होता है –संस्कृत पाण्डुलिपियों का प्रतिलिपिकरण। नेसफिल्ड के अनुसार शिक्षक वृन्द छात्रों को नागरी लिपि का ज्ञान देकर एक प्रकार से उनका समय बर्बाद कर रहे होते हैं क्योंकि इस लिपि का उपयोग समाज में कहीं नहीं होता है। कोई भी आदमी नागरी लिपि का प्रयोग नहीं करता है। यदि छात्रों को नागरी की शिक्षा विद्यालयों में दे भी दी जाए तो भी इसका फल उन्हें कुछ भी नहीं हो सकता है कारण कैथी से अलग अन्य किसी लिपि की समाज में कोई उपयोगिता नहीं है। नेसफिल्ड साहब ने आगे लिखा कि ऐसा देखा जाता है कि यदि किसी छात्र को कैथी से अलग नागरी लिपि या अन्य किसी लिपि की शिक्षा दी भी जाती है तो वे कुछ ही दिनों बाद इन लिपियों को भूल जाते हैं, ज्योंहि वे विद्यालय से बाहर निकलते हैं। नेसफिल्ड ने भावुक होकर यहां तक लिख डाला कि यदि सरकार छात्रों को द्वितीय लिपि की शिक्षा देने के लिए इतनी ही बेचैन है तो उसे नागरी के बदले चीन की लिपि की शिक्षा देना ज्यादा उचित और श्रेयस्कर होगा। लेकिन सरकार को कैथी लिपि को छोड़कर नागरी लिपि की शिक्षा देने की गलती नहीं करनी चाहिए। लिपि की शिक्षा के संबंध में 'शोर' नामक अंग्रेज हाकिम का नागरी के प्रति एवं नेसफिल्ड का कैथी के प्रति समभाव दर्शाता है। कैथी लिपि का नेसफिल्ड द्वारा इतनी अच्छी वकालत करने के बाद भी सरकार की सोच में परिवर्तन नहीं हो सका। वर्ष 1888 में अवध की शिक्षा नीति प्रकाश में आयी और इसमें कहीं भी इस बात का जिक्र नहीं किया गया था कि कैथी लिपि की पढ़ाई जारी रहेगी।

कैथी के विरोध में अंग्रेज हाकिम

हालांकि कैथी को छोड़कर नागरी लिपि अपनाने के पीछे अंग्रेज हाकिमों की अथवा सरकार की क्या सोच थी, इस संबंध में उल्लेख नहीं किए गए। लेकिन कैथी को लेकर हाल के कुछ वर्षों में आई आलोचनात्मक टिप्पणियों से सभी लोग अवगत थे। अंग्रेज हाकिमों की इस संबंध में दृष्टि स्पष्ट होती जा रही थी। कैथी लिपि के विरोध में सबसे पहले अंग्रेज हाकिम राल्फ ग्रिफिथ महोदय की टिप्पणी आयी। उस समय ये उत्तरी पश्चिम प्रांत के तृतीय सर्किल के निरीक्षक के पद पर पदस्थापित थे। उन्होंने हिन्दी शिक्षा की स्थिति पर सरकार

का ध्यान आकृष्ट कराते हुए लिखा कि नागरी पढ़ने के प्रति लोगों में रुचि नहीं के बराबर है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सरकार द्वारा कैथी में ग्रामीण दस्तावेज, पटवारी पेपर लिखने की छूट दी गयी है । इस कारण गांव में पढ़नेवाले छात्र कैथी लिपि ही सीखना चाहते हैं, नागरी नहीं । उन्हें पता होता है कि कैथी का उपयोग ही उन्हें आगे जाकर करना है । ग्रामीण पाठशाला के हेडमास्टर बच्चों को कैथी ही सीखाते हैं । सरकारी विभाग द्वारा जो हिन्दी की किताबें छापी गयी हैं, उन्हें पढ़नेवाला कोई नहीं है । यदि इन पुस्तकों को विद्यालयों में लोकप्रिय करना है तो सबसे पहले कैथी को विद्यालय से हटाने के बारे में सोचना होगा। इससे थोड़ा आगे बढ़कर दूसरे हाकिम एवं विद्यालय निरीक्षक टी.बी.कैन ने वर्ष 1862 में सरकार को सलाह दिया कि नियम में परिवर्तन करना आवश्यक है । वर्तमान नियम के अनुसार ग्रामीण दस्तावेज,पटवारी पेपर आदि कैथी अथवा उर्दू में लिखे जाने एवं सरकार द्वारा स्वीकार किए जाते हैं । यदि जिला स्तर पर इस चीज की मनाही कर दी जाए, अर्थात् ग्रामीण;पटवारी पेपर कैथी के बदले नागरी में लिखे हुए ही स्वीकार किए जाएं तो लोगों को नागरी लिपि पढ़नी ही होगी । अवध के वरीय शिक्षा निरीक्षक ए.थॉमसन ने वर्ष 1870 में कैथी लिपि की भरपूर आलोचना की और इसे असभ्यों की लिपि तक करार दे दिया । दूसरे अंग्रेज हाकिम ब्राँईनिंग ने यहां तक कह दिया कि कैथी लिपि के माध्यम से छात्र ऊंची और अच्छी शिक्षा नहीं पा सकते हैं ।

अंग्रेज हाकिम की तरह कैथी के प्रति दुर्भावना रखनेवाले देसी लोगों की कमी नहीं थी । हालांकि वे लोग अपनी भावना का इजहार खुले तौर पर नहीं कर पाते थे क्योंकि कैथी जन-जन की लिपि थी । विरोध करनेवाले अधिकतर लोग नागरी के पक्ष में थे और वे चाहते थे कि कैथी के बदले नागरी को प्रतिस्थापित कर दिया जाए । वर्ष 1883 में इलाहाबाद से निकलनेवाले दैनिक प्रदीप ने इस बात की खुलकर आलोचना की कि उर्दू-फारसी को हटाकर कैथी को राजकीय, न्यायालय की और शिक्षा की लिपि बना दी गयी है । दैनिक का तर्क था कि लोग यह कहते हैं कि समाज के अधिकतर लोग कैथी जानते हैं और लिखते हैं । जबकि ये अधिकतर लोग में ज्यादातर पटवारी हैं जो जमीन से संबंधित दस्तावेज तैयार करते हैं । पत्र के संपादक की राय थी कि लोग नागरी जानते हैं और नागरी पढ़ना भी चाहते हैं । कानपुर से निकलनेवाले 'ब्राह्मण' नामक अखबार वर्ष 1888 में ही एक समाचार एवं टिप्पणी प्रकाशित करते हुए लिखा कि जिला के अधिकारियों को बुलाकर इस बात पर विचार-विमर्श किया गया कि फारसी के बदले यदि नागरी को न्यायालय की लिपि बना दी जाए तो क्या अंतर पड़ेगा । अधिकारियों का यह भी मत है कि फारसी को हटाकर कैथी को न्यायालय की लिपि बनाने से कोई खास फायदा होनेवाला नहीं है क्योंकि कैथी और फारसी की लिखावट में थोड़ा ही अन्तर है । दूसरी बात जो लोग पहले फारसी जानते थे, वही लोग आज कैथी जानते हैं ।

संदर्भ :

1. क्रिस्टोफर आर किंग, वन लैंग्विज टू स्क्रिप्ट

और अंत में

विविधता में एकता भारत की सबसे बड़ी ताकत है एवं सबसे बड़ी खूबसूरती भी। भारत में भाषा की भरमार है और सचमुच यह अत्यंत पुलकित कर देनेवाला तथ्य है। हम भारतवासी हमेशा इससे गौरवान्वित भी रहते हैं। भारत का भाषायी सर्वेक्षण भारत में प्रचलित भाषाओं की संख्या 179 आंकता है और वहीं वर्ष 1921 में किए गए जनगणना (पृष्ठ -4) से यह बात स्पष्ट होती है कि भारत में 188 भाषाएं हैं। भारत के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री एस.के.चटर्जी के मतानुसार इसकी संख्या 180 है। वर्ष 1981 में किए गए जनगणना के अनुसार द्रविड़ परिवार की भाषा तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम और इंडो-यूरोपियन भाषा परिवार की भाषा-हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, उड़िया, पंजाबी और आसामी को यदि जोड़ दिया जाए तो 93 प्रतिशत आबादी इसी भाषा का उपयोग करती है। वर्तमान में मोटे तौर पर हिन्दी को छोड़कर एक भाषा-एक राज्य की परंपरा है। उर्दू एक राज्य की शासकीय लिपि है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और यह सभी जगहों पर बोली जाती है।

भारत में भाषा के आधार पर राज्य गठन की अवधारणा वर्ष 1921 में ही आयी जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा इसकी स्वीकृति मिली। वर्ष 1947 में आजादी मिलने के बाद भारत सरकार ने भाषायी राज्य आयोग की स्थापना इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु की। दिसम्बर, 1948 में दिए गए अपने प्रतिवेदन में आयोग ने स्पष्ट किया कि देश के हित में यह उचित नहीं होगा। परन्तु जन विरोध और जन आंदोलन ने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को इस बात के लिए विवश किया कि तेलुगु बाहुल्य क्षेत्र को लेकर आंध्रप्रदेश का गठन किया जाए। वर्ष 1952 में ऐसा किया गया और वर्ष 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गयी जिसका उद्येश्य इस विवाद को सुलझाना था। प्रतिवेदन के कुछ ही समय बाद वर्ष 1955 में भाषा के आधार पर निर्मित राज्य अस्तित्व में आ गए।

कैथी के इतिहास की चर्चा से स्पष्ट होता है कि इसका इतिहास गौरवशाली रहा है और यह कभी जनलिपि थी। वर्तमान बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान एवं गुजरात राज्यों में पूर्णत: या अंशत: कैथी लिपि प्रचलित थी। इतना ही नहीं, इन राज्यों से आप्रवासी श्रमिक देश के बाहर भी कैथी में लिखित दस्तावेज ले गए और इसे सुरक्षित भी रखा गया। देवनागरी लिपि के प्रचलन के साथ ही कैथी का पतन आरंभ हो गया। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ देवनागरी के विकास एवं सम्मान को जोड़ा गया। न्यायालय एवं सरकारी दस्तावेजों में कैथी का पतन इससे पूर्व ही होना आरंभ हो चुका था, परन्तु जनलिपि के रूप में इसकी मान्यता कुछ दशक पूर्व तक बनी रही। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास में शायद ही ऐसा कोई संगठन समाज के सामने आया, जिसने कैथी के विकास, अधिमान्यता के संबंध में सरकार के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत किए हों।

कैथी की समाप्ति के बाद अब इसके अतीत पर व्याख्या का समय आया है। अंग्रेजी हुकूमत का एक वर्ग कैथी के समर्थन में और दूसरा वर्ग कैथी के विरोध में रहा है। कैथी का समर्थन अथवा विरोध क्यों किया गया, इस पर विस्तृत अध्ययन होना बाकी है। कैथी के मनोरंजक स्वरूपों के बारे में अध्ययन होना चाहिए।

यदि बिहार और उत्तर प्रदेश के संदर्भ में देखें तो शायद ही कोई घर होगा जहां कैथी में लिखित दस्तावेज न हों। लेकिन यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि तीन सौ वर्षों से अधिक समय तक जनलिपि के रूप में बसी कैथी के दस्तावेज खोजने पर भी पुस्तकालयों में नहीं मिलते। यदि यह कहा जाए कि कैथी जाननेवालों की संख्या अब गिनती की ही रह गयी है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसकी आवश्यकता नहीं है कि कैथी को जनलिपि के रूप में व्यवस्थित किया जाए। देवनागरी विश्व की सर्वाधिक उन्नत लिपि में से है और देवनागरी को अपनाना, इसके विकास में योगदान देना गौरव की बात है। परन्तु कैथी को छोड़ देना भी उचित नहीं है। कैथी का स्थान न तो देवनागरी ले सकती है और न देवनागरी का स्थान कैथी। यदि आज कैथी जानकारों की इतनी कमी है तो वह सिर्फ इसलिए कि इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। कैथी में लिखे हुए लाखों दस्तावेज हमारे समाज में आज भी हैं और यदि हम कैथी नहीं जान सकेंगे तो उन दस्तावेजों को पढ़ भी नहीं सकते, आनन्दित भी नहीं हो सकते। देवनागरी जाननेवालों को कैथी सीखना एकदम आसान है और मैं तो कहूंगा कि यह कुछ मिनटों-घंटों का ही खेल है। यदि कैथी की जानकारी मिल जाए तो कम से कम कैथी में लिखित दस्तावेज, पोथी, पांडुलिपियां हम सुरक्षित तरीके से रख सकते हैं। अन्यथा, यह हमारे लिए उपयोगी नहीं, कहकर इससे बचने का रास्ता खोजते हैं।

सरकार को भी इस दिशा में सक्रिय होना चाहिए। बिहार विधान परिषद् में माननीय सदस्या डा० (श्रीमती) ज्योति द्वारा पूछे गए तारांकित प्रश्न के उत्तर में सरकार ने जवाब दिया कि यदि इस संबंध में कोई परियोजना सरकार के समक्ष प्रस्तुत की जाती है तो सरकार इस पर

विचार करेगी। जमीन से संबंधित सरकार के पास सुरक्षित दस्तावेजों को पढ़नेवाले भी अब गिने-चुने लोग हैं। क्या यह सरकार की चिन्ता नहीं है कि उनके पास सुरक्षित दस्तावेजों को उचित ढंग से पढ़ने के लिए पर्याप्त मात्रा में कैथी के जानकार सभी क्षेत्रों में लोग उपलब्ध हो सकें?

व्यक्तिगत रूप से मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि कैथी सिर्फ कायस्थों की लिपि थी। चूँकि कायस्थ जाति के लोग लिखने-पढ़ने, जमीन से संबंधित दस्तावेज तैयार करने में आगे रहते थे, इसलिए ऐसा समझा जाने लगा कि कैथी का संबंध कायस्थों से है। कोई भी जनलिपि किसी एक जाति की नहीं हो सकती। मेरा तो मत है कि कायस्थों की लिपि कहकर कैथी के पतन का रास्ता ही उजागर किया गया। जो भी हो, हमें इस बात के भी प्रमाण नहीं मिले कि बिहार एवं उत्तर प्रदेश, अथवा भारत में सक्रिय कायस्थ जाति से संबंधित कोई भी संगठन कैथी के प्रचार-प्रसार के लिए कभी सक्रिय रहा हो। प्रयास कायस्थ जाति के लोग करें अथवा कायस्थ से इतर जाति के लोग, लेकिन ऐसी व्यवस्था तो होनी ही चाहिए कि हमारी अगली पीढ़ी कैथी में लिखित, मुद्रित सामग्रियां पढ़ सके।



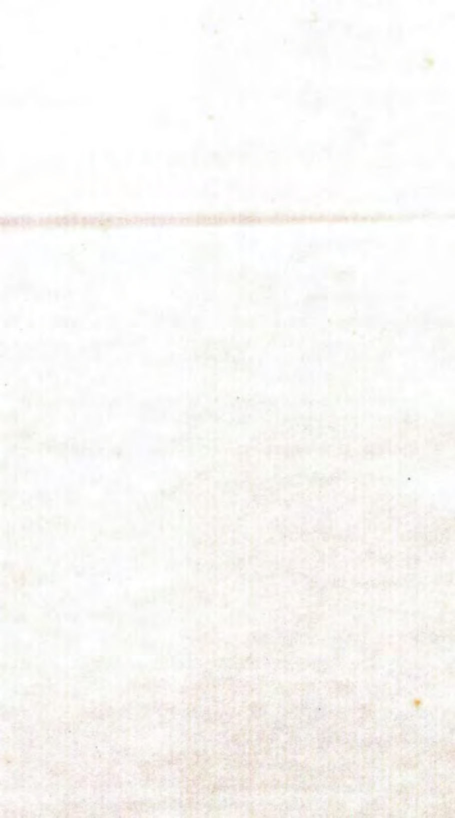
संदर्भ ग्रंथ :

1. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1972
2. नागरी लिपि और हिन्दी वर्तनी, डॉ0 अनन्त चौधरी, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1973
3. लेखन कला का इतिहास, ईश्वरचन्द्र राही, खण्ड-1 एवं खण्ड-2, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
4. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पद्मभूषण भाषाचार्य साहित्यवाचस्पति डॉ0 सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,पटना
5. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिशंकर प्रसाद 'शलभ', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/मुजफ्फरपुर, 2008
6. कायस्थों की सामाजिक पृष्ठभूमि, अशोक कुमार वर्मा
5. भारत का भाषा सर्वेक्षण, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, खंड-5, भाग-2
6. द इन्डस पीपुल स्पीकर्स, शंकरानन्द स्वामी
7. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969, श्री राजेश्वर झा
8. अंगिका भाषा का इतिहास, डा0 तेजनारायण कुशवाहा
9. मैथिली साहित्य का इतिहास, डा0 गंगानाथ झा "श्रीश'
10. मिथिलाक्षरक उद्भव ओ विकास, श्री राजेश्वर झा
11. मैथिली साहित्यक आदिकाल, डा0 उमेश मिश्र
12. प्रोपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रिप्ट इन आई0एस0ओ0/आई0ई0सी0 10646, अंशुमान पांडेय, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, यू0एस0ए0
13. आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका, डॉ0 धीरेन्द्र नाथ सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
14. तारीख ए शेरशाही
15. शेरशाह सुर एण्ड हिज डायनेस्टी
16. शेरशाह सुरी, हुसैन खान
17. डॉ0 ग्रियर्सन का साहित्येतिहास, डा0 आशा गुप्ता
19. लैंग्विज रिलीजन एण्ड पॉलिटिक्स इन नॉर्थ इण्डिया, पॉल ब्रास
20. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, 1894
21. साक्षात्कार, श्री गोविन्द झा
22. प्रस्तावना, श्री हेतुकर झा

अन्य ग्रंथ :

1. लिपि विज्ञान और नागरी लिपि, ओम प्रकाश भाटिया 'अराज'
2. भॉयसेज इन स्टोन, एरस्ट डब्लु हाफर
3. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्र नाथ शर्मा
4. एन हिस्टोरियन्स एप्रोच टू रिलिजन, आर्नल्ड टाइन्वी
5. दी आर्ट ऑफ राइटिंग, यूनेस्को
6. न्यू लाइट ऑन दी इंडस सिविलाइजेशन
7. सिंधु लिपि का रहस्योद्घाटन, के.एन.शास्त्री, डा. फतेह सिंह
8. क्वॉयन्स ऑफ एनसिएन्ट इंडिया, ए. कनिंघम
9. भाषा विज्ञान, डा0 भोलानाथ तिवारी
10. सामान्य भाषा विज्ञान, बाबूराम सक्सेना
11. दी डिक्शनरी ऑफ इंडियन हिरोग्लिफ्क्स
12. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर
13. एलिमेंट्स ऑफ साउथ इंडियन पालियोग्राफी, ए0सी0बर्नेल
14. इंडियन पालिओग्राफी, बूलर, संपादक - जे0एफ0 फ्लीट
15. इंडियन एंटिक्वेरी, जर्नल ऑफ रोयाल एसियाटिक सोसाइटी
16. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंग्विज, डा0 सुनीति कुमार चटर्जी
17. हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, डॉ0 जयकान्त मिश्र
18. आउटलाइन ऑफ लिग्विस्टिक एनालिसिस, डॉ0 बी0 ब्लॉक एवं जी0एल0 ट्रेगर
19. सामान्य भाषा विज्ञान, डॉ0 बाबूराम सक्सेना
20. दि हिस्ट्री ऑफ अल्फाबेट, एडवर्ड क्लॉड





लेखक परिचय



नाम : भैरव लाल दास

माता : श्रीमती गोदावरी देवी

पिता : श्री बालेश्वर लाल दास

जन्म : 15 जनवरी, 1968

जन्म स्थान : रतुपाड़, मधुबनी (बिहार)

शिक्षा : एम०ए० (राजनीति शास्त्र), पी०जी० डिप्लोमा (पत्रकारिता एवं जनसंचार, मानव संसाधन विकास)

प्रकाशित कृतियाँ : गोत्राध्याय (मिथिला विवाह पद्धति का अध्ययन)

सेवा : दूरसंचार विभाग (भारत सरकार), अरुणाचल प्रदेश विधान सभा

सामाजिक कार्य : पटना के 30 सरकारी मध्य विद्यालयों का उन्नयन, वंचित वर्ग के कौशल विकास, मिथिला चित्रकला, मैथिली भाषा एवं संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के क्षेत्र में सक्रिय

संप्रति : परियोजना अधिकारी, बिहार विधान परिषद्

संपर्क : बी-402, श्रीराम कुँज अपार्टमेंट, रोड नंबर - 4, महेशनगर, पो०- केशरीनगर, पटना - 800 024, दूरभाष : 094306 06724

ई-मेल: blds412@gmail.com

कैथी लिपि

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ च छ

ज झ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ फ ब भ म य

र ल व श ष स ह का कि की कु कू के कै को कौ

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९